❋ समर्पण ❋

(प्रभु भक्ति के अनूठे गीत)

(भाग-5)

लेखक

ललित साहनी

प्रकाशक

ललित साहनी
फ्लैट नं. 402, पाम व्यू, सरोजनी रोड,
सान्ताक्रूज (प.) मुम्बई-400054
फोन : 64511119, मो. 9892215385

समर्पण (भाग-5) *लेखक :* **ललित साहनी**

प्रथम भाग : 183 भजन
द्वितीय भाग : 139 भजन
तृतीय भाग : 62 भजन
चतुर्थ भाग : 144 भजन
पञ्चम भाग : 159 भजन

© लेखकाधीन सुरक्षित

मूल्य : ८० रुपये – Rs. 80

प्रकाशक : **ललित मोहन साहनी**
फ्लैट नं. 402, पाम व्यू, सरोजनी रोड,
सान्ताक्रूज़, (प.) मुम्बई-400054
फोन : 64511119 मो. 9892215385

संस्करण : सन् 2014 ई.
सृष्टि संवत : 1,96,08,53,114
विक्रमी संवत : 2071
दयानन्दाब्द : 190

मुद्रक : मेहता रवीन्द्र आर्य अध्यक्ष सरस्वती साहित्य संस्थान, दिल्ली द्वारा, क्विक ऑफसेट, दिल्ली से मुद्रित

वैदिक संगीतज्ञ–श्री ललित साहनी

–डॉ. धर्मेन्द्र कुमार शास्त्री
सचिव, दिल्ली संस्कृत अकादमी

सम्पूर्ण आर्यजगत् के लिए अत्यन्त हर्ष का विषय है कि संगीत के क्षेत्र में ललित साहनी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व अत्यन्त प्रशंसनीय है। श्री ललितजी को बाल्यकाल से ही आर्यसमाज के सिद्धान्तों से परिचित होने का सौभाग्य अपने माता-पिता से प्राप्त हुआ है। बाल्यकाल से ही संगीत में आपकी विशेष रुचि रही। चारों वेदों में सामवेद का अपना विशिष्ट स्थान है। साम है ही समता का वेद, संगीत का वेद, मानवीय जीवन में समत्त्व, सन्तुलन बनाये रखना ही साम है। तभी तो गीता में भगवान् कृष्ण ने लिखा है–**वेदानां सामवेदोऽस्मि।** ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ संगीतमय जब बन जाता है, वह साम है–**ऋचि अध्यूढं साम** कहा भी गया है।

संगीत का अपना विशिष्ट योगदान है। निराश से निराश व्यक्ति में भी आशावाद का संचार संगीत द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। संगीत के (12) बारह स्वरों में पूर्ण संगीत विद्यमान है मानो सम्पूर्ण सृष्टि संगीतमय ही है।

श्री ललितजी ने इस संगीत को अपने जीवन में उतारा है। गहन ध्यान में डूबकर संगीत का भरपूर आनन्द आपने अपने जीवन में लिया है। निरन्तर 14 वर्षो के अथक प्रयास से आपने अभी तक 1259 भजन लिखे हैं। इनकी विषेशता यही है कि इन्होंने सांसारिक विषयों से उपरत होकर संगीत को वेदमन्त्रों का पुट प्रदान किया है, यही कारण है कि आपके सम्पूर्ण भजनों में से 941 भजन वेदमन्त्रों पर आधारित रचे हैं। 240 भक्तिगीत तथा 75 गीत महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन पर आधारित एवं 4 गीत देशभक्ति पर आधारित हैं। उपरोक्त सभी भजनों की धुनें असंख्य रागों से भरी हुई हैं–इनके परिश्रम को संगीत हृदय से आप्लावित व्यक्ति ही जान सकता है कि इन्होंने इस क्षेत्र में कितना महनीय प्रयास किया है, कितना अच्छा हो कि आर्यसमाज के सभी संगीतज्ञ विद्वान् भजनोपदेशक इनके द्वारा लिखित रचित, गीतों को गायें तथा इनकें परिश्रम को समझने का प्रयास करें। यह एक आर्यसमाज के इतिहास में नया प्रयास होगा संगीत को जानने का समझने का।

वेदज्ञ विद्वानों से मन्त्रों के अर्थो को सुनकर व समझकर पूर्ण वेदमन्त्र को संगीत का पुट देने का कार्य आप ही कर सकते हैं। **'समर्पण भाग–1'** में प्रभुभक्ति के अनूठे गीतों को निबद्ध कर दिखाया है, आपने अपनी संगीतमयी शैली से। सृष्टि के कण-कण में प्रभु नाम ओंकारा की महिमा, जीवन का उद्देश्य, वेदवाणी की महिमा, शहीदों का संस्मरण, देवदयानन्द की मानवीय जाति पर कृपा, इत्यादि

असंख्य विषयों पर आपने सुन्दर सुमधुर सुललित शब्दों में अपने स्वरों को स्वरित किया है।

प्रभुभक्ति के अनूठे गीत **'समर्पण भाग-2'** में तो आपकी लेखनी वेदमयी बन चुकी है। **पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति**, उस प्रभु के सुन्दर काव्य को देखो जो कभी न मरता है, न ही जीर्ण शीर्ण होता है। चारों ही वेदों के भिन्न-भिन्न विषयों पर आधारित मन्त्रों का सस्वर संगीत जनमानस के चित्त को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करता है। मराठी एवं दक्षिण भारतीय भिन्न-भिन्न स्वरों पर आधारित इनकी रचनाएँ बड़ी निराली हैं। अद्‌भुत हैं। इनके मानसपटल पर जो अभिव्यक्तियाँ अभिव्यञ्जित हुई हैं, उनका क्या कहना?

ऐ पाठक! गायत्री मन्त्र का ज़रा-सा आस्वादन करके तो देखो!

करुणानिधान ईश्वर, तेरी ही शरण आयें।
तृष्णा से मन हटा के, तेरा तेज हृदय में पायें॥
शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव, ज्ञानकर्म में सहाय।
दे ज्ञान का प्रकाश, तेरे ध्यान मे समायें॥

महेचन त्वामद्रिवः *(सामवेद-291)* के मन्त्रार्थ पर अपने भावों को उपनिबद्ध करते हुए कितना सुन्दर सुललित शब्दों में आत्माभिव्यक्ति प्रस्फुटित की है ललित जी ने, देखिये तो सही—

ऐश्वर्यवान् ईश्वर, ना साथ तेरा छोड़ूँ।
कोई लाख कोटि धन दे, निज मुखन तुझसे मोड़ूँ॥

प्रभुभक्ति के अनूठे गीत **'समर्पण भाग–3'** में भी आपने वेदमन्त्रों का गायन अत्यधिक प्रभुभक्ति के रस में रसाभार होकर तल्लीन होकर गीतों को संगीत का पुट प्रदान किया है। वेद का समस्त मानवजाति के लिए सन्देश है—**मनुर्भव,** मनुष्य बनो, इसी के भाव को प्रस्फुटित किया है साहनी जी ने—

खुद को तू मानव बना, और जीवन को उठा।
कर ना तू जग में तमाशा, ना बढ़ा संकीर्णता॥
वेद ही मानव की करता, देवमार्ग पर खड़ा।
वेद सौम्य स्वरूप से भरे ज्ञान का अमृत घड़ा।
भेदभाव में शून्यता है, प्रेमभाव में अनन्तता॥

कितने मार्मिक शब्दों में अपनी पीड़ा को उजागर किया है साहनी जी ने। वेद के विभिन्न विषयों पर आधारित इन प्रभुभक्ति गीतों को सभी जन आपस में मिल-जुलकर गुनगुनाएँ तो पृथिवी पर स्वर्ग का-सा वातावरण निर्मित बन जायेगा, इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। कितना कठिन दुष्कर कार्य है यह कि वेद के गम्भीर अर्थो को सरल, सुललित शब्दों में अभिव्यक्त करना। इस कला के पारखी श्री ललित साहनी ब्राह्ममुहूर्त में जागरण कर अपने भावों को गीतों में संजोते हैं, सँवारते हैं।

प्रभुभक्ति के अनूठे गीत **'समर्पण भाग–4'** में जनमानस के हृदयतन्त्री की

वीणा को बजाकर काव्य की हृदयहारिणी अनुभूतियों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करने का अद्‌भुत कौशल कर दिखाया है आपने। अपनी हृदय की पीड़ा को श्री ललित जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

ऋषि दयानन्द की बात करते हो
हाय! उन्हें याद कैसे करते हो?
अपने प्यारों को दुख व्यथा देकर
मुस्कुराने की बता करते हो।
उन्नति दूसरों की देख मन तो सुलग उठा
बात वसुधैव-कुटुम्ब की करते हो
अपने घर को सँवारो तुम पहले
क्यूँ ज़माने की बात करते हो?
वेद स्वाध्याय से करो चिन्तन
तुम बहाने की बात करते हो॥
खुद को कहते हो भक्त महर्षि का
पर अदावत (शत्रुता) की बात करते हो ॥

मानो इन पद्यों से महर्षि के सम्पूर्ण जवीन का चित्र खींच लिया हो श्री ललित जी ने। इस भाग के 144 भजनों में इस प्रकार का रसास्वादन हम ले सकते हैं।

कोई भी वैदिक विद्वान्, संगीतज्ञ, महात्मा संन्यासी आ जाये तो श्री ललित जी उनके साथ बैठकर इन गीतों को स्वाभाविक रूप से गुनगुनाना चाहते हैं अहर्निश। न केवल वे स्वयं अपितु आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सविता आपके गीतों को गाकर जीवन को धन्य समझती हैं। आपकी दोनों सुपुत्रियों में भी माता-पिता के संगीतमय गुण देखने को मिलते हैं, नम्रता और अदिति दोनों ही अपने पूज्य पिता द्वारा रचित इन गीतों को संगीतमयी अभिव्यक्ति में बांध देती है तो इन दोनों सुयोग्य पुत्रियों को पाकर पिता भी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। पूरा परिवार वैदिक सिद्धान्तों से ओतप्रोत है। श्री ललित जी इसी तरह समस्त वैदिक वाङ्मय के मन्त्रों को संगीतमय बनाकर इस स्वजीवन को धन्य बना डालें। यही ईश्वर से कामना करते हैं। परमपिता परमेश्वर से आपके दीर्घायु उत्तम स्वास्थ की कामना करते हुए पुनश्च आपको बारम्बार शत्-शत् प्रणाम! स्वस्ति शान्ति आपके जीवन में सदा बनी रहें। तथा आप अपनी इस विद्या को किसी सत्पात्र में डालकर उस विद्याा को अजर अमर बनाकर वैदिक मन्त्रों पर आधारित सस्वर सामगान को संगीतमय बना देंवें।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ आपका–

–डॉ. धर्मेन्द्र कुमार शास्त्री
सचिव, दिल्ली संस्कृत अकादमी

पत्र द्वारा एक ईश-भक्त-हृदय का उदगार एवं परामर्श

प्रिय बन्धुवर ललित साहनी जी, नमस्ते।

आपने संगीत के माध्यम से वेदवाणी को उपस्थित कर बड़ा ही कठिन कार्य किया है। वेद का नाम सुनते ही लोग मौन हो जाते हैं।

आपने उन्हें गेय बनाकर सामान्य जनों तक पहुँचाने में अद्‌भुत कौशल का परिचय दिया है।

मैं मुग्ध हूँ आपकी भाषा पर जो गूढ़ भावों को बोधिगव्य बना रही है। अफसोस कि हमारा समाज आपकी उपलब्धि से अपरिचित है।

अच्छा हुआ कि आपने 'समर्पण' शीर्षक से चार भागों में जन जन तक उसे पहुँचाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया है।

यहाँ आपका ध्यान व्यवहारिक बात की ओर खींच रहा हूँ। आप इस साहित्य के स्वयं प्रकाशक क्यों बने? आप पुस्तक का प्रचार नहीं कर सकते, यह काम व्यवसायिक प्रकाशकों का है, उनके जगह जगह पर एजेन्ट रहते हैं जहाँ वे प्रकाशित रचना भेज कर प्रचार कर लेते हैं, उनका व्यवसाय है, प्रकाशित पुस्तक बिकनी चाहिए यह कार्य सम्भव नहीं है, भय है पुस्तक पड़ी न रह जाए, पुस्तक किसी प्रकाशक को दीजिए, भले ही उसको आर्थिक सहयोग दीजिए। आपका समय और शक्ति प्रचार और प्रसार में लगे तो उत्तम।

जो पत्रम् पुष्पम मैंने प्रचार प्रसार के निमित्त रखा है स्वीकार करो।

युग युग तक आपका यह कार्य प्रेरणा देता रहेगा, इसमें सन्देह नहीं।

आगे चलकर समर्पण पुस्तिकाएँ ग्रन्थ रूप में स्थायी महत्तव की बनेंगी। आपकी सुकन्या अदिति आपके पद चिन्हों पर चल रही हैं। सन्तोष और गर्व की बता है। शृंखला अटूट रहे। हार्दिक शुभचिन्तन। आपका स्नेही

–जगदेव सिंह ठाकुर

अनुक्रम

धुन	नं.	शीर्षक	भजन	पृ.
,,	1.	साध्या पुरुष मोक्ष आधिकारी	कौन है ब्रह्मा	11
,,	2.	शिशु	प्रभु की गरिमा	14
,,	3.	द्वेष दूर हों, प्रीति और शान्ति सरसें	बदले बदले आज	15
,,	4.	भूत और भव्य द्वारा सदा पाप से मुक्ति	हे भूत और भव्य	16
,,	5.	सोम की धारा का रस लूट लो	सोमधार बही	17
,,	6.	इस मधु के विषय में हम दोनों बोले	पा लिया है तुझसे	18
,,	7.	स्तोता को धनाधिकारी बनाता है	गये वारि वारि	19
,,	8.	गणों का स्वामी	वसुवेद ज्ञान अधिपति	20
,,	9.	वह हमें विपदाओं की भट्ठी में झोंके	तेरे वाज को मैं पाऊँ	21
,,	10.	आत्म जीवन निर्माण	सत्य ज्ञान का सूर्य	22
,,	11.	अमृतमय ज्ञान स्वरूप	अमृतमय ज्ञान स्वरूप	23
,,	12.	प्रभु-वर्षा रिमझिम	आत्मलोक में वर्षा छाई	24
,,	13.	दिव्य भोज	इन्द्रपुरी के देवता भूखे	25
,,	14.	महान परमेश्वर	हे शक्र हमें शक्ति दे	27
,,	15.	मेरा मन काँप रहा है	अहंकार क्यूँ ना तजें	28
,,	16.	हे चरुण!	हे वरुण हे राजन	29
,,	17.	मुझ कूप पतित का उद्धार करो	जगज्जननी अदिति	30
,,	18.	हम तेरे सम्मुख मूढ़ हैं	हे अग्ने तेजोमय	32
,,	19.	सत्य को जान	अरे संसार संसार	33
,,	20.	विरोधियों की पराजय	आत्मा में सङ्कल्प बल	34
,,	21.	आचार्यरूप अग्नि में याचना	उत्तम ज्ञान से उत्तम	35
,,	22.	तू मुझ जैसा ही	हे परब्रह्म परमात्मन	37
आ	23.	वह सबको मार्ग दिखाता है	ना देखे नयन फिर	38
,,	24.	यज्ञ पुरुष का नाद	ऐ जान तुझमे आग	39
,,	25.	हे सोम! मेरी मनोभूमि पर वर्षा करो	प्यासी धरती है वर्षा	40
,,	26.	इन्द्र सबसे महान	महिमा इन्द्र की गायें	41
,,	27.	परमप्रिया सच्चिदानन्द रूपिणी...	मेरे प्रेम का असली	43
,,	28.	गो-लोक	गायों के थनों से दूध	44
,,	29.	द्रविणोदा अग्नि	द्रविणोदाग्नि कर ले	46
,,	30.	हम उससे ऐश्वर्य माँगते हैं	क्या कभी तुमने धन	47
,,	31.	आओ वृत्र को जीतें	पाप की वृत्ति क्यों नहीं	48
,,	32.	सोम प्रभु की महिमा	बनाया काव्य रूप संसार	49
इ	33.	नाना के तेजों से अपने को महातेजस्वी...	मैं पूरा वर्चस्वी बनूँगा	50
,,	34.	संसार भगवान की कीर्ति	जहाँ भी देखो वहीं है	51
,,	35.	मधुरफल खाने वाला पंछी	स्वादु फल को क्यों	52
,,	36.	मेरी झोली भर दो	भर दो झोली ये माँग	53
,,	37.	हे नरो! मोक्ष अभिलाषियो, इन्दु का...	मन श्रद्धा भक्ति से	55
,,	38.	वर्णाश्रम-मर्यादा की प्रकाशिका उषा	देखो प्राची में खिली हुई	56

धुन	नं.	शीर्षक	भजन	पृ.
इ	39.	पुरोहित अग्नि	विश्व प्रभु का है गीत	57
”	40.	विनयी प्रभु	विनयी प्रभु हम सबों में	59
”	41.	परमेश्वर स्वभूत्योजाः	परब्रह्म ही है ब्रह्माण्ड का	60
”	42.	बहते ज्ञान रसों में डुबकी लगा लो	चलें सन्मार्ग पर हम	61
”	43.	इन्द्र तेरे शरीर में अनेक कर्म है	इन्द्र रूप आत्मन् कर ले	63
”	44.	सदा पुरुषार्थी रहें	पुरुषार्थ कर्म ही सुखों का	64
उ	45.	उषा का आवाहन	तुम अन्धकार का करती	65
”	46.	हे शक्तिमय!	प्रार्थना अपने प्रभु से	66
”	47.	प्रभो! दुरित मार्ग से बचाओ	हे रक्षक स्तुतिमय परमे	67
”	48.	तुझे किसी भी दाम पे न त्यागूं	एक तरफ तो परमेश्वर है	67
”	49.	बाधक शत्रु मार्ग से दूर हों	धर्म के मार्ग पे चलना	69
”	50.	हे प्रभु! हम तुम्हारे प्रति समर्पित हैं	हे परमात्मन् हे इन्द्र!	71
”	51.	सहनशक्ति भी महती महिमा	वियम दे विभद दे साहस	72
”	52.	सबको पवित्र करने वाले अग्नि देव	हे प्रभुदेव पावक तू	73
”	53.	दिव्य आचमन	अब धन अनभाये	75
”	54.	यज्ञ और उत्सवों में भगवान् का भजन	ज्ञान का प्रभु दाता	76
”	55.	मित्र शत्रु बन जाते हैं	मित्र से मित्र तरे वो ही	77
”	56.	शुचियज्ञ में शुचि छवि	उरुवेन्य निजून्याव	78
”	57.	इस हैं? उस	स्तुति का दिव्य संगीत	79
ए	58.	आत्मयुक्त आकाश के दोहन से अमृत...	एक ओ३म नाम जपे	81
”	59.	सरस्वती में गिरने वाली पाँच नदियाँ	पाँच नदियाँ बहते बहते	82
”	60.	परमात्मा जीव को गुहा में मिलता है।	परमात्मा को पाये वही	83
”	61.	हमें अकृत घर ना दे	कर दी आशा कितने जन्मों	84
”	62.	तृष्णा को दूर से नमस्कार	प्रभु दो सम्पत्ति	85
”	63.	सोम की विविध धारायें	हे सोम प्रभु तुम सहृदय	86
”	64.	प्राणों की छावनी	भोली भाली स्तुतियाँ	87
”	65.	पवमान सोम की रस धार	वन्दना की तेरा स्तोता	89
”	66.	गुरुमन्त्र गायत्री	हे सर्वरक्षक सच्चिदानन्द	90
ओ	67.	हे समर्थ परमेश्वर!	जागे श्रद्धा भक्ति व प्रेम	91
”	68.	इन्द्र और वरुण का आदर्श	इन्द्र और वरुण के संरक्षण	92
”	69.	इन्द्र की गढ़ियाँ	देह पुरी ने देखो देहपुरी	93
”	70.	लोरियाँ	मन को तू सरसा दे	94
”	71.	काला और श्वेत दिन	श्वेत है इक दिन इक	95
”	72.	इन्द्र को सभी पुकारते हैं	क्या ऐसे व्यक्ति को देखा	96
”	73.	दिति और अदिति के भाग	मार्ग अदिति का खोलें	98
”	74.	सत्य नियम का सृष्टा	बोलें तो सत्य ही बोलें	100
”	75.	सखा	चलो गाये हम प्रभु महिमा	101
”	76.	सच्चे भक्त केवल मधवन् परमेश्वर से...	प्रतिभा भरे हैं प्यारे	103
”	77.	ज्ञानीजन प्रभु को स्वात्मा में देखते हैं	द्युः से प्रकाशपुञ्ज फैलते	104
”	78.	उसका पार कोई नहीं पा सकता	हे भगवन् तुमने रचे	105

धुन	नं.	शीर्षक	भजन	पृ.
ओ	79.	सच्चे सम्राट वरुण द्वारा आत्म सम्राज्य...	वो है वरुण वो है करुण	106
”	80.	हे माँ सरस्वती!	हे शारदे हृदय में तू	107
क	81.	विकलांगों के प्रति सद्भाव रख	क्या कोई विकलांग हो	108
”	82.	पास जाकर स्तुति कर	गीत स्तुति के गा तू	109
”	83.	ब्रह्म चोदनी आरा..	हे पूषन पाषक देव	111
”	84.	दुर्बुद्धि लोगों की दुष्टता के विरोध में...	याज्ञिक परोपकारी	112
”	85.	तन तन्त्री	अग्निदेव तुम्हें अपने जीवन	113
”	86.	नमः ने द्यावापृथिवी को धारा है	झुकते झुकते पाप जीवन के	115
”	87.	विश्वानर देव का महान बल	लो वन्दना विश्वानर	116
”	88.	परम जातवेदा मुझे श्रद्धा और मेधा दे	समिधा को अग्नि मिली	117
”	89.	हम उषा काल में तेरी स्तुति करें	रंग दो प्रभु जी जीवन	119
”	90.	प्रभु दर्शन	ब्रह्मा जगत नियंता	120
”	91.	पूर्णिमा	ऐ मन ज्ञान बहुत थोड़ा	121
”	92.	चराचर का ज्ञाता	हे वरणी महाप्रभु	123
”	93.	नाथ! सब बन्धन काट दो	कमजोर हो गए हम	124
”	94.	भेंट का अभाव	भक्ति भरे भाव ने	125
”	95.	श्रेष्ठ कर्मो का प्रेरक परमात्मा	हे पूषन पोषक देव	126
”	96.	वाणी के सलिल में स्नान	पवित्र ज्ञान सलिल	127
”	97.	अविनाश का उपाय	जगत की बीहड़ पगडंडी	128
”	98.	पाप-दुःख हर्ता सुखकर्ता परमेश्वर	हे प्रभुवर हे सुखकर	130
”	99.	प्रकाशमय त्रिलोकधारी	हे भगवन् हे जगकर	131
”	100.	हे आत्मा के बलदाता	हे भगवन् हे आत्मन्	132
”	101.	सर्व प्राणों के प्राण परमात्मन्	हे प्रभुवर हे हितकर	133
”	102.	तेजोमय अन्तरिक्ष	ज्योतिर्मय परमेश्वर	134
”	103.	अद्भुत प्रजापति परमेश्वर	सकल ब्रह्माण्ड के पज्ञा	136
”	104.	सच्चा बन्धु व सखा	हे प्रेरक हे बन्धु हे	137
”	105.	हे परमात्मा हमें सुपथ पर ले चलो	हे अग्रणी परम ज्ञानी	138
”	106.	स्वराज्य की अर्चना	साधना साधना साधना	139
”	107.	शुद्ध प्रभु की शुद्ध रक्षाएँ	पावन प्रभु जी रक्षक	141
”	108.	मैं दास वह स्वामी	प्रभु मुझे अपना बल दे	142
”	109.	सुख स्वरूप शक्ति	आग गिरी रे आग गिरी रे	143
”	110.	योग महिमा	सार्थक ईश्वर की भक्ति	145
”	111.	धौंकनी	आज हमने यज्ञ की वेदी	146
”	112.	आत्मदेव	हे अग्ने व्रतों के पालक	148
”	113.	परमात्मा का दर्शनीय काव्य	कितना मीठा होता है	149
”	114.	सबको पवित्र करने वाले पावक परमात्मा	प्यारे प्रभो उन्नत करो	150
”	115.	परमेश्वर का दिव्य दर्शनीय काव्य	गा रहा हूँ गीत प्रभु तेरी	151
”	116.	विष्णु के तीन पग	त्रिधर्म धारण किये	152
”	117.	मधुर वनस्पतियाँ मधुर वाणियाँ	माधुर्य जीवन का अनुभव	153
”	118.	हे नाथ मैं अपनी भक्ति तुम्हारे हृदय...	तुम तक पहुँचाने आया	154

धुन	नं.	शीर्षक	भजन	पृ.
क	119.	प्रलोभन का नाश	भोग में फँस गया	155
''	120.	वह एक है	इन्द्र मित्र अग्नि वरुण	157
''	121.	ब्रह्मणस्पति की रक्षा का फल	वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते	158
''	122.	स्वामी हमें हमारा हिस्सा दो	प्यार करूँ तुझसे वरुण	160
''	123.	विश्व खेत को सींचने वाला	कोई तेरी महिमा को	162
''	124.	भद्रक्रतु साधुबल और महान सत्य का...	हे अग्ने हे ज्योतिर्मय	164
''	125.	जलबिन्दु सा शुभ	वरणीय प्रभु की विभूति	166
''	126.	वेद का आर्थिक दृष्टिकोण	ऐश्वर्य माँगू तुमसे	168
''	127.	प्रवाह से बचें	बढ़ता जा जीवन में	169
ख	128.	श्रद्धा का रहस्य	प्रभु को पाने का नाम	171
ग	129.	कैसी बुद्धि और क्रिया हमें चाहिए	इन्द्रराजन् करो कृपा	172
''	130.	इन्द्र को हव्य प्रदान करो	इन्द्रराजन् को दूँ हवि	173
''	131.	अमति दुर्मति और पाप दूर हों	हे बल के पुत्र, प्रभु	174
घ	132.	ऋत महिमा	सृष्टि नियमों को परमे	175
''	133.	सर्व औषध रूप प्राण	हे प्राणवायो तुम सर्व	177
''	134.	परम यज्ञ पुरुष की कृपा से बन्धन...	हे आदित्यो खो लो बंधन	178
''	135.	दुष्कर्मी सन्मार्ग की नहीं तर सकते	स्वर्गीय गान की सुस्वर	180
च	136.	हे वज्र वाले	हे प्रभु मंगलकारा	181
''	137.	सबका आनन्द दाता	देखो प्रभुकृपा रहे ना	182
''	138.	आलस्य प्रमाद-त्यागपूर्वक यज्ञ	शत्रु बड़ा मानव का है	183
''	139.	आराधना कर	इन्द्र शरण दे पाप हर	184
''	140.	प्रभु की प्राप्ति	हृदय में ईश्वर के प्रेम	185
''	141.	सूर्योदय	प्राची में सूर्य चमका	187
''	142.	जिसका दर्शन अति भद्र और चारू है	दिव्य दर्शन दे दयामय	188
''	143.	भोग साधन पहले बनाता हूँ	सम्मुख तेरे मैं आया	190
''	144.	मीठे आँसू	जीवन में यज्ञ करें	191
''	145.	सोमरस आत्म-कलश में प्रवेश कर रहा...	चिरगान की तरंगें	193
''	146.	अग्नि प्रभु को मथो, सम्मुख प्रकट करो	जो प्रभु की मोहनी छवि	194
ज	147.	अपने आत्मा की पहचान	जग में तू अवतीर्ण हुआ	196
''	148.	ग्लानि और तन्द्रा मुझसे दूर रहे	प्रतिदिन अभिषुत करता	197
''	149.	आत्म शुद्धि द्वारा सर्व बिधैश्वर्य प्राप्ति	हे परमेश्वर शुभंकरे	198
''	150.	मेरी वाणीयाँ तो इन्द्र के गीत गा रही है	महिमा हे इन्द्र गाऊँ	199
''	151.	हृदय से ज्योति को जानना	हे प्रभु हृदय में ज्ञान का	200
''	152.	अभयकारी	हे परमेश्वर अभय करो	202
''	153.	हे अन्नपते!	सारे अन्न बीज से उत्पन्न	204
''	154.	कृपण से इन्द्र मैत्री नहीं करता	लोभियों का लोभ ही	205
''	155.	साधक की साधना से सफलता	साधना के बिन प्रगति	207
ट	156.	वह हमारा पिता दाता पुत्र और सखा है	पल पल छिनछिन घड़ी	208
ड	157.	कर्मफलों का भाग	आत्मा अजर अमर शस्त्र	209
''	158.	सहारा तुम्हारा	मन्त्र-मनन वेद-यजन	210
अ	159.	खिलाड़ी	विश्व के खिलाड़ी खेल	211

(1) साध्या पुरुष मोक्ष आधिकारी

क्व? स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः। ब्रह्मा कस्तं सपर्यति॥

साम पू. १४२, ऋ.८.६४.७

उपह्वरे गिरीणां सङ्गये च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत॥

सा.पू. १४३, ऋ.८.६.२८

तर्जः *अ अम्मा तेनम्मा*

कौन है ब्रह्मा कौन अजन्मा?
सब पूछें वो है कहाँ?
ढूँढा है दर बदर
आता ना क्यूँ नज़र?
है वो इधर
या है उधर
है कहाँ बोलो आखिर ॥कौन है?॥

आँखों से क्यों ना दिखे नित
बिन देखे कैसे होवें तृप्त
ना भाल पे लगी चरण रज
भई है निरास गई आस
हुआ जानना भी मुश्किल ॥कौन है?॥

ती ना ना ना नि ना ना ना
रे रे ना न नी तरे ना न नी
नभ से बरसती बदली
पहुँचे सागर में क्यूँ नदी?
करे वर्षा किरणों की रवि
देती है वायु प्राण-शक्ति
स्वर्णिम् सुन्दर है अनुदित ॥कौन है?॥

वर्षा जो सद्गुण की करे
दया न्याय सुविधा को भरे
साथी वो हर जन्म में रहे
बनके युवा हरदम रहे
करे प्राणियों का जो हित ॥कौन है?॥

गीत झरनो के झरझरित
गाते हैं मानो प्रभु के गीत
लता बेल वृक्ष हैं सुरभित
हैं सब ये प्रभु के ही प्रतीक
लीला देख झूमता दिल ॥कौन है?॥

चिड़ियाँ चहकती कुञ्जों पर
प्रभु से पक्षी पाते हैं स्वर
ये रंग बिरंगी तितलियाँ
महिमा को देख हर्षित जिया
स्वररूप रंग अप्रतिम ॥कौन है?॥

कोई तो है जो है वृषभ
करता नियंत्रित सर्व जगत
कई पृथ्वी चन्द्र सूर्य नभ
चले नियम अखण्ड हितप्रद
कहीं रात है कहीं दिन ॥कौन है?॥

कहलाता है वो तुविग्रीव
करता जगत को कवलित
पृथ्वी वो रचता पुनः नवीन
वेदों का ज्ञान देता नीक
ब्रह्मा वो है इक प्रथित ॥कौन है?॥

आकाश से इक सुनी गूँज
छलकी अमृत की इक बूँद
कुछ देर जग से रहा मैं दूर
कटुता अशांति अब हो गई चूर
जगी ईश चाह अतीव ॥कौन है?॥

साम्राज्य शान्ति का खिला
दर्शन सर्वत्र फिर मिला
एकान्त पर्वत पर चढ़ा
नदियों का संगम लगा भला
आत्मा भी गया खिल ॥कौन है?॥

नैनों के पट भी हुए बन्द
ज्योंति की किरणें हुईं संग
रस में अभिषिक्त था आनन्द
छाया आत्मा में प्रकाशन
आनन्द छाया अखिल ॥कौन है?॥

दर्शन हुए फिर अनुभूत
सर्वत्र देखा प्रभु का रूप
कहने लगा आत्मा स्वयं
महिमा उसकी है प्रभूत
अन्तस भी गया खिल ॥कौन है?॥

चर में अचर में तू ही तू
जलवायु पृथ्वी में भी तू
पर्जन्य रवि शशि और बिजु
देखूँ जहाँ पर भी तू ही तू
साम्राज्य तेरा अप्रतीक ॥कौन है?॥

करते हैं जो प्रभु पे सन्देह
पाते ना वो प्रभु का स्नेह
जब उनपे गिरती हैं गाज
तब याद आते हैं इष्टदेव
श्रद्धा भी जागती फिर ॥कौन है?॥

ईश्वर को श्रद्धा से ही जान
क्यों माँगे उसका तू प्रमाण?
जो सदा ही रहता है विद्यमान
सब जीव-प्राणों का है वो प्राण
ना त्याग उसका मुम्किन ॥कौन है?॥

(अनुदित) प्रभात वेला (सुरभित) सुगन्धित (अप्रतिम) अनुपम, अनोखा (वृषभ) वर्षक (तुविग्रीव) बहुत ग्रीवा गर्दन वाला, (कवलित) निगल जाना (नीक) शुद्ध निर्मल (प्रथित) प्रसिद्ध (अतीव) अत्यधिक (अभिषिक्त) नहाया हुआ, भीगा हुआ (प्रकाशन) प्रकाशित, करने का कार्य (अखिल) समपूर्ण, अखण्ड (अनुभूत) अनुभव द्वारा ज्ञात (प्रभूत) अधिक, प्रचूर (पर्जन्य) मेघ, बादल (बिजु) बिजली, तड़ित (अप्रतीक) सम्पूर्ण, समूचा (गाज) बिजली।

2. शिशु

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषित श्रिये ॥

ऋ. 9.104.1, साम. 568 , 1157

तर्जः *अम्मा ते नम्मा अमै किन्दी नू रुम्मा*

प्रभु की गरिमा, गायें महिमा, बरसाई जिसने करुणा
जायें घुलमिल, मिलें सबके दिल
छोड़ें ईर्ष्या द्वेष, सब होवें एक
मैत्री में हो विश्व अखिल॥ ॥प्रभु की॥
ध्यान से मानव जरा सोच, ना पाई प्रभु की तूने गोद
पाओगे कैसे प्रभु की प्रीत? ना तुम परस्पर बने जो मीत
मिल जायें सबके दिल॥ ॥प्रभु की॥
हम पुत्र प्रभु के हैं सरल, पीयें ना हम द्वेषों का गरल
हो जायें हृदय सभी के नीक, सब मिलके गायें प्रभु के गीत
होती जाए दूर मुश्किल॥ ॥प्रभु की॥
नई ज्योति देखो प्रकट हुई, अनुभव प्रभु की सत्ता हुई
आत्मा की चेतनता जगी, प्यारे पिता की लगन लगी
संस्पर्श जब गया मिल॥ ॥प्रभु की॥
आत्मा ने पाया नया जन्म, जाना आध्यात्मिक धर्णि-धर्म
अपने पिता के ही अंक में शिशु बनके बैठा निःशंक मैं
हटा वैर-द्वेष कातिल॥ ॥प्रभु की॥
आत्मानुभूति से सजग, जागा है भोला सा बालक
नहला धुला के किया है स्वच्छ, निष्काम कर्मों से है आदत्त
सबसे गया है घुलमिल ॥प्रभु की॥
व्यापक सखित्व का ये यज्ञ, करता है सन्तों को स्थितप्रज्ञ,
मित्रता भी है एक बालोपम, निर्वेर निर्मल सन्तों का धन
संसार भर में काबिल॥ ॥प्रभु की॥

(गरल) विष, ज़हर (नीक) स्वच्छ (धर्णि) धारण किया (अङ्क) गोद, आँच (निःशङ्क) निडर (कातिल) घातक (सजग) जागृत (आदत्त) ग्रहण किया, गृहीत (स्थित प्रज्ञ) सब विकारों से दूर (बालोपम) बाल स्वभाव (काबिल) योग्य।

३. द्वेष दूर हों, प्रीति और शान्ति सरसें

अ॒ग्निं द्वेषो॒ योत॒वै नो॑ गृणीमस्य॒ग्निं शं योश्च॒ दात॑वे।
विश्वा॑सु वि॒क्ष्ये॒वि॒तेव॒ हव्यो॒ भुव॒द्वस्तु॑र्ऋपू॒णाम्॥

ऋ. 8.71.15

तर्जः *अमले अगले नीलाकाशम्*

बदले बदले आज विश्व को द्वेष की आग ने घेरा है
सुलझाने पर नहीं सुलझती द्वेष ने डाला डेरा है॥
बदले ये विश्व कैसे?
बदले बदले...

मन्दिर मस्जिद चर्च गुरुद्वारे आग की इन लपटों में जलते (2)
भाषा-सीमा-जाति-विवाद में चल रहा तेरा मेरा है॥
बदले बदले...

पूँजीवाद-श्रमिक वर्गों में विवाद द्वेष का कारण है (2)
राष्ट्रों में द्वेष-विद्वेष का छाया गहन अन्धेरा है॥
बदले बदले...

एक दूसरे राष्ट्र सामरिक-शक्ति बढ़ाने में उद्यत हैं (2)
कौन आक्रमण किस पर कर दे भय चहुँ ओर घनेरा है॥
बदले बदले...

हे जगदीश्वर तुम्हीं छुड़ाओ पारस्परिक द्वेष-कलह को (2)
तव हाथो में सुख-शान्ति का नितनित नया सवेरा है॥
बदले बदले...

पारस्परिक ये विद्वेष ही देता रहता भय को जनम (2)
घातक शस्त्रास्त्र की होड़ में डूबता सबका बेड़ा है
बदले बदले...

युद्ध की विभिषिकायें हम पर जब हावी हो जाती हैं (2)
स्वप्न में भी बम गोले बरसते मन पर भय का पहरा है॥
बदले बदले...

हे परमेश्वर पुकार सुन लो तुम सबका उद्धार करो (2)
कुछ भी कर लें अन्त में तुझको दिखाना अपना चेहरा है॥
बदले बदले...

तुम ही हमारे राष्ट्रों को प्रभुजी भूमि बनाओ ऋषियों की (2)
हस्तामलकवत उन आँखों में तीन काल का हेरा है॥
बदले बदले...

ऋषियों की अध्यात्म-साधना प्रीति-लहर उपजाती है (2)
द्वेष-दमन कर आत्म-शक्ति से करते दूर अन्धेरा है॥
बदले बदले...

हे परमेश्वर चारों ओर से प्रेम-स्नेह की लहर उठाओ
द्वेषमुक्त शान्ति सरसाओ, ना फिर भय ना अनेरा है॥
बदले बदले...

(अनेरा) अन्याय (सामरिक) युद्ध सम्बन्धित (विभीषिका) डर दिखलाना, समझ में आना (हेरना) ढूँढ़ना (हस्तामलकवत) समझ में आना।

4. भूत और भव्य द्वारा सदा पाप से मुक्ति

यदि॒ जाग्र॒द्यदि॒ स्वप॒न्नेन॑ एन॒स्योक॑रम्।

भू॒तं मा तस्मा॒द्भव्यं॑ च द्रुप॒दादि॑व मुञ्चताम्॥

अथर्व. 6.115.2

तर्जः *अकाय विन्नी लावे तरनीर वन्ददे नो*

हे भूत और भव्य, पापों से मुक्त कर दो,
सोये या जागते में, तेजास्विता से भर दो,
है विशाल भूत बीता, है अनन्त काल भावी
दोनों अपार सिन्धु, इन्हें मनीषिता अवर दो॥
॥हे भूत॥

जैसे हैं पद के बन्धन आगे नहीं चलाते
ऐसे ही पाप बन्धन, उन्नत नहीं कराते
जब तक मिले ना मुक्ति, जन्म मृत्यु आते जाते
और सूक्ष्म स्थूल दुरित, हमको नहीं बचाते

अपने तो भूत का, मैं करूँ आत्म निरीक्षण
और भव्य के लिये भी, सङ्कल्प दृढ़ करें मन
दोनों का दे दो आश्रय, सब दुरित दुःख हर लो॥ (2)

॥हे भूत॥

इन दोनों सिन्धुओं में, लगे चिन्तनों की डुबकी
और पाप मैल धोये, मन पाये घड़ियाँ सुख की
इस स्थूल लोक के मैं, पूरे करूँ निरीक्षण
और बनके कार्य दक्ष, जागृत रहूँ निरन्तर
फिर सूक्ष्मलोकाश्रय में, मानस को दृढ़ करूँ मैं
जीवन को मैं उभारूँ, पुण्यात्मा बन रहूँ मैं
जाग्रत या स्वप्नावस्था, दुःख पाप सारे हर लो॥

॥हे भूत॥

(मनीषिता) बुद्धिमानी, समझ - (अवर) श्रेष्ठ - (दुरित) बुराई।

5. सोम की धारा का रस लूट लो

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा॥

ऋ. 9.87.8

तर्जः *अड़गे कन्मर्णिये अड़लिन पू विदले*

सोम-धार बही गिरी से
जान परिस्त्रुत हुई रे
आत्म विभोर किया
परम अद्रि प्रभु ने
अन्तस में अवतीर्ण हुई?
देखो तामसिक वृत्तियाँ गई रे,
वाहरे! सात्विक वृत्तियाँ बढ़ी रे (2)

जीवात्मा की ओर बह के (2)
रसपान इसका कराये
परमोच्च शिखर से,

परिस्त्रुत होकर
भक्त की आत्मा सरसाये (निशदिन) (2)
अन्तस्-ज्योति किरणों को जो
चोर चुराकर ले गए थे
वो फिर से मुझको मिल गईं रे॥ बही रे...

अन्तस् ज्योति से दिव्यानन्द का (2)
आत्मा में होता है आभास
ईश ज्योति के दर्शन से ही
बहता है सोम-प्रवात (आत्मन्) (2)
श्वास श्वास में थिरकन पाती
हो तरंगित बहती जाती (2)
कृतकृत्य जान हुई रे॥ बही रे...

(गिरी) पहाड़, पर्वत (परिस्त्रुत) बहना, (अद्रि) पर्वत, (कृत्यकृत्य) सन्तुष्ट।

6. इस मधु के विषय में हम दोनों बोले

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्। होतेव क्षदसे प्रियम्॥

ऋ. 1.25.17

तर्जः *अड़रिन्दे यारिन्नडी कवड़ मान्जपो*

पा लिया है तुझसे प्रभु तेरे गुणों को
लाया हूँ अमृत तुझसे जगत के लिए
तुझसे लगा चुका हूँ अपने इस मनचित्त को
की उपासना मधु के लिए॥ ॥पा लिया है॥

प्रभु मुझको दे दे मौका अमृत को बाँटूँ
प्राणी मात्र में शान्ति की मिठास मैं ला दूँ
परिमित नहीं है रखना अमृत के स्वाद को
औरों को भी मैं इसका भागी बना दूँ
मैंने इसलिये ही तुझसे सीखे आचरण
और प्राप्त हुआ ये अमृत दान के लिए
कल्याण के लिए॥ ॥पा लिया है॥

आतुर हुआ हूँ मैं तेरे उपदेश से
सन्मार्ग आचरण व मधुवेद से
'होता' बनाया मुझको गुणकर्म से
अवगत कराया मुझको दान-धर्म से
क्यों कर छिपाऊँ इनको स्वार्थ के लिए
सीखें हम सारे सामर्थ्य-बल के लिए
उज्जवलता लिए ॥ ॥पा लिया है॥

उपदेश कर्म में प्रभु बनिए सहाय
मैं और आप मिलकर करें कुछ उपाय
उपासक हूँ तेरा प्रभुजी ज्योतियाँ दिखाओ
तेरी कृपा में हूँ परोपकारी बनाओ
बल माँगता हूँ तुझसे अन्यों के लिए
अमृत पियें तो बाँट के सब प्रेम से पिएँ ॥
इस यज्ञ के लिए ॥ ॥पा लिया है॥

(परिमित) कम, थोड़ा (आतुर) उत्सुक (मधुवेद) मधुरता को जानना (होता) यज्ञकर्ता (अवगत) जाना हुआ, ज्ञात।

7. स्तोता को धनाधिकारी बनाता है

क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम्।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥

ऋ. 4.17.13

तर्जः *अनुराग राग राग शुभ योगयोग नमगे*

गये वारि वारि, प्रभु हृदय हारी, वर दे
गुण-दोष-दुरित का ज्ञान दे
निधि तेरी मुझे देना
तू देना दाता तू देना
तू देना दाता तू देना
स्तुतिगुणन-राग, पुरुषार्थ साथ भर दे
गये वारि वारि प्रभु हृदय हारी वर दे॥ आऽऽऽ

ज्ञान की भीख दे, कर्म की सीख दे
और स्वभाव तुझ सा नित देना
जैसे हैं गुण तेरे दाता वही देना
प्रीति से आराधित धन देना
सकल ऐश्वर्य सम्पन्न, धन पूज्य दे
ज्ञान अन्न व बल देना
तू देना दाता तू देना
तू देना दाता तू देना
स्तुति गुणन-राग, पुरुषार्थ साथ भर दे॥

गये वारि वारि

आ ऽ ऽ ऽ
चाहे तू दीन को, धनिक बना देता
चाहे तू धनिक को, दारिद्र्य दे देता
वज्रधारी बनके विच्छिन्न कर देता
आस्तिकों को सुख तू ही देता
है सामर्थ्य तेरा महापल्लवित सुख-कल्याण को देना
तू देना दाता तू देना
तू देना दाता तू देना॥

॥गये वारि वारि ॥

8. गणों का स्वामी

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

ऋ. 2.23.1

तर्जः ***अनुराग लोल गात्री वारवाई नीनरात्री***

वसुवेद-ज्ञान अधिपति
निस्तारक रूप धनपति
ज्ञानियों में परमज्ञानी (2)
मुमुक्षु समूह के स्वामी॥

वसुवेद...

आदर्शों में परमादर्श ज्येष्ठों में हो देदीप्यमान
उत्तम गणों के गणपति कवियों में कवि महान (2)
रक्षा करो सब ओर से सुन लो हमारी बिनती॥
वसुवेद...

हो तुम उत्तम उपमेय हो यशस्वियों में यशस्वी
दीर्घ दर्शियों में सबसे बढ़कर हो दीर्घदर्शी (2)
हे दीप्तिमान परमेश्वर! दे दो हमें भी सद्गति॥
वसुवेद...

सुनकर पुकार प्रार्थना, कर दो अनूप संरक्षण
आओ हृदय सदन में स्वागत विराजो भगवन्
अपने प्रकाश से प्रभु हृदय में भर दो ज्योति॥
वसुवेद...

(निस्तार) पार लगाना, मोक्ष, (उपमेय) वर्णन करने योग्य, (अनूप) अनुपम, सुन्दर

9. वह हमें विपदाओं की भट्ठी में झोंके

तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातये उतैधि पृत्सु नो वृधे॥

ऋ. 5. 9. 7

तर्जः *अनुरागिनी इदायिन करडी विरन्य पूकड़*

तेरे वाज को मैं पाऊँ प्रभु तुम से माँगूँ बल-धन (2)
प्रभु तुम महाबली हो बल तुमसे माँगे हम
प्रभु दे! हमें दे! दे वाज कर प्रपन्न॥ तेरे वाज...

मनोबल शारीरिक बल तो अभिप्रेत है
किन्तु परोपकार के लिए ये श्रेष्ठ हैं
धन हो तो लक्ष्य विशेष हो
बल हो तो ना मन-भेद हो
प्रभु दे! दे 'वाज' कर हमको प्रपन्न (2) तेरे वाज...

झोंको हमें विपदाओं की तप्य भट्ठी में
स्वर्ण की तरह तपा दो अग्नि में
कर दो सशक्त और परिपुष्ट
हृदय करो निर्मल और देव जुष्ट
प्रभु दे, दे वाज कर हमको प्रपन्न॥ (2)   तेरे वाज...

हारें ना कभी भी हम जीवन-संग्राम
हो सके तो सत्य हेतु दें प्राण
इसलिए बल प्रभु प्रदान करो
हे नेता! विजय अनुदान करो
प्रभु दे, दे 'वाज' कर हमें प्रपन्न॥ (2)   तेरे वाज...

तीन दुःखों का सामना जब मन करता है
पग पग पर उसे जूझना पड़ता है
दुःख से कभी भयभीत ना हों
इनपे सदा ही जीत हो
प्रभु दे, दे वाज कर हमकों प्रपन्न॥ (2)   तेरे वाज...

(अभिप्रेत) इच्छा करने योग्य, (प्रपन्न) पूर्ण, (वाज) धनबल ऐश्वर्य, (अनुदान) भेंट।

10 आत्म जीवन निर्माण

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ। अहं सूर्यं इवाजनि॥

ऋ. 8. 6. 10, साम. 152–1500, अथर्व. 20. 115. 1

तर्जः *अन्तरीचा गोद माझा*

सत्यज्ञान का सूर्य मुझमें, किरणें चहुँ दिशी चल पड़ीं
सूर्य के सदृष्य हुआ मैं, मुझको तो अनुभव यही॥   ॥सत्य ज्ञान॥

सूर्य-तापित ज्योति से प्राण जैसे मिल रहे
वैसे भक्ति-ज्ञान-ज्योति, मुझसे पा मन खिल रहे
अनुभवी किरणें प्रकाशित, फैलकर बन गईं हवि॥   ॥सूर्य के॥

जो सान्निध्य में आवे उसमें चेतना मैं जगा रहा
चारों ओर के मानवों को परमपूत बना रहा

ये कृपानिधी की कृपा है, इसमें मेरा कुछ नहीं॥ ॥सूर्य के॥

मैंने तो आदित्य-प्रभु की, की उपासना यथारूप
प्रकट होकर भासने लगा उनका ही निजी सूर्यरूप
मैंने मेधाबुद्धि द्वारा सत्य विद्या ग्रहण की॥ सूर्य के॥

बुद्धि-स्थान द्युलोक को अपने में मैंने ग्रहण किया
और बुद्धि द्वारा सत्य को सर्वथा धारण किया
सत्य-ऋत ज्ञान ज्योति हृदय में जलती रही॥ ॥सूर्य के॥

सत्यबुद्धि धारकर भक्ति की शक्ति आ गई
देह मन आत्मा में यूँ तेजस्विता भी छा गई
पुत्र ने पाई पिता से मधुरिमा ज्योतिर्मयी॥ ॥सूर्य के॥

सूर्य समगुण देने वाले कारुणिक मेरे पिता,
सत्य के तव सूर्य से ही खिल गई जीवन-प्रभा,
इस जीवन के यज्ञ में पितृत्व तेरा ही सही॥ ॥सूर्य के॥

(तपित) ताप युक्त (हवि) आहुति (सान्निध्य) समीपता (चेतना) सुध (परमपूत) अतिशुद्ध (आदित्य) सूर्य (मेधा बुद्धि) मेधावी बुद्धि (ऋत) सृष्टि नियम (मधुरिमा) सौन्दर्य, सुन्दरता (कारुणिक) दयता, दयारूप (पितृत्व) पिता का भाव या धर्म (सर्वथा) सब प्रकार से।

11. अमृतमय ज्ञान स्वरूप

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह॥

ऋ. 7. 11. 1

तर्जः ***अमृतमाय अभयमाय जननी नी यिनन्नुमिद***

अमृतमय ज्ञानस्वरूप मोक्षानन्द दो कृपानिधे!
दुःख दशा जाये छूट मुक्ति का आनन्द मिले
कर दो मार्ग प्रदर्शन हे सुबोध!
मेरी आत्मा को तुझ बिन भला कौन सींचे?
इसलिये प्रार्थना आप मेरी सुन लीजिए
अमृतमय...

जिसके हृदय में हो आप, उसे छूते ना पाप (2)
दिव्यगुणों की देते हो प्रभु तुम सौगात (2)
उसके दिन सुदिन हो जाते, नित आगे बढ़ाते
दिव्य गुण और रमण साधन के साथ मिल
हृदयासन पे मुझको तू बैठा मिले॥

अमृत मय...

दुःख द्रारिद्रय को मिटाते सुख ऐश्वर्य दिलाते (2)
तेरी कृपा बिन मुक्ति का आनन्द न पाते (2)
किसी में ये आनन्द कहाँ? जहाँ तू आनन्द वहाँ
तुझ सर्वव्यापक ईश्वर को हम जाने
ऋषि भी तुझको अमृतदाता कहते॥

अमृत मय...

(सौगात) उपहार, (सुबोध) उत्तम ज्ञान युक्त।

12. प्रभु-वर्षा रिमझिम

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः। चरन्ति विद्युतो दिवि॥

ऋ. 9. 41. 3

तर्जः *अम्बे अम्बे मीयन पिल्लई*

आत्मलोक में वर्षा छाई सोम प्रभु ने है बरसाई
मेरे सोम प्रभु पावन हैं आनन्द दायक रस सरसाई॥

॥आत्मलोक में॥

युग-युग से संचित, आत्मा और मन के पापों को प्रभु धोते हैं
शुष्मी हैं सोम प्रभु बलियों के हैं बली आत्म बलों को संजोते हैं
बल को बरसाकर वो निर्बल को बल देते हैं
असहायों के सहाय बन उत्साहित कर देते हैं
जागृति हीनों को जागरुक बना देते हैं
हो रही है ये वृष्टि अनुभवित स्वरलहरी ये रिमझिम मनभाई॥

॥आत्म लोक में॥

बरखा का रिमझिम मधुर संगीत वैसा ही आत्मा में बरस रहा
रमणीय संगीत मानस में रम रहा जिसके लिये था मैं तरस रहा
आनन्द बल बौछार, शीतल-मंद्र-मन्दार
प्राण पवन बनके स्फूर्ति देवे अपार
हो गया हरित भूलोक वैसे चित्रण रहा मोद
किया सोमप्रभु ने मुग्ध मुझे, सोम हरियाली मानस में छाई॥
॥आत्म लोक में॥

वर्षा में करें नदियाँ अवतरण वैसे आत्म-शिखर से बहे सोमजल
मन बुद्धि प्राणों को कर दे आप्लावित बनते सुभग सुमंगल
हृदयाकाश-विद्युत करे मानस को उद्युत्
क्षण-प्रभ है तड़ित मगर दे स्थायी विभा प्रवर
जीवन के अन्त तलक, चमके ज्योति अनवरत
सोम परमानन्द पड़े ना मन्द, द्युति दिव्यानन्द की बलदायी॥
॥आत्म लोक में॥

(सरसाई) रस से ओत प्रोत (संचित) जमा हुआ (बौछार) वर्षा की बूँद (मंद्र) शान्त (मोद) हर्ष खुशी (मुग्ध) सरलता से मोहित करना (मानस) आत्मिक, (मन्दार) स्वर्ग (स्फूर्ति) प्रफुल्लित मन की तरावट (आप्लावित) भीगा देना (सुभग) सौभाग्यशाली (उद्युत्) प्रकाशित करना (प्रवर) श्रेष्ठ (अनवरत) हमेशा।

13. दिव्य भोज

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा। आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः॥

साम. 571, 1326 ऋ. 9. 106. 7

तर्जः *अम्बे अम्बे नीयन पिलै*

इन्द्रपुरी के देवता भूखे
सब कुछ पाकर फिर भी रूठे
किये जी भरके भोग-आस्वादन
हृदय शान्ति ना कर सके धारण

इन्द्रियों ने मेरी भोगों से उबकर
कर लिया है अनशन
भूख मिटे शायद भोजन ना खाकर

असफल हुआ ये परिक्षण
दुर्बल हुआ शरीर
और बढ़ गई हृदय की पीर
सपने आने लगे
और खोया मन का धीर
अब शान्ति कैसे मिले?
हाय! कल्पित चित्र दिखे!
खाली मन हुआ शैतान का घर
फिर से घिर आई नज़रें भोग पर

॥इन्द्र पुरी के॥

आखिर हुए जब आत्मा के दर्शन
विषयों की भूख हुई गुम
हृदय कलश में टपका सोमरस
सरस ज्योति की लगी धुन
नीरस विषय हुए
और रस के झरने बहे
आत्म-रति के रहे
अनुभव खूब हुए
शक्ति-ओज बढ़े
ना मनवा अब उबे
अब ना भोग की कोई मुझे फिकर
मीठा रस सोम का कर रहा तर

॥इन्द्रपुरी के॥

अब नैन देखें आत्मा प्रकाशित
कान सुनें नाद अनाहत
वैखरी वाणी हो गई अन्तस्
भक्ति का जागा अमृत
जीवन बना प्रवाह
पैरों को मिल गई राह
जागी ज्योति की चाह
पा ली आत्मा ने थाह
नन्दनवन देह के देव

शशि सम पायें किरणें
शुद्ध गंगा में हुए देव सुखकर
और पाने लगे भोजन अनवर

(आस्वादन) रस लेना (नन्दनवन) इन्द्र आत्मा का बाग, सुहाना स्थान (वैखरी वाणी) बोलने वाली वाणी (आत्म-रति) आत्मा की शोभा (अनवर) श्रेष्ठ, उत्तम (थाह) गहराई (अनाहत नाद) आंतरिक आवाज़, आनन्दित नाद।

14. महान परमेश्वर

स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः। इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः॥

ऋ. 8. 32. 12

तर्जः *अम्मावै वणगार उयलयये*

हे शक्र हमें शक्ति दे, शक्ति दे (2)
याचना के लिये हम जायें कहाँ?
शक्तिदाता तो केवल तुम्हीं सृष्टि के॥ ॥ हे शक्र॥
पग पग पे हम गिरने वाले अबल
शक्ति संयुक्त कर दो हे सबल!
हे अन्तराभर परिपूर्ण स्वामी
तुम्हीं शक्र हो देव हो महादानी
सब दोष त्रुटियाँ वारण करने वाले
हे पालक हे रक्षक हमें तृप्ति दें
हम भिखारी तेरी शक्ति के (2) ॥हे शक्र॥
जब से तुम्हें जाना शक्र प्रभु
जागा हमारा हृदय-अंशु
आ बैठे हम शक्र के द्वार पर
हे देव! सबके आन्तर को भर
अनुभव हुआ अब तेरी शक्ति का
और मोल समझा तेरी भक्ति का
हम भिखारी तेरी शक्ति के ॥हे शक्र॥

(शक्र) शक्तिमान (अबल) शक्तिहीन (सबल) शक्तिमान (त्रुटि) गलती (अंशु) सूर्य, ज्योति किरण। (अन्तराभर) अन्तःकरण में सजा हुआ

15. मेरा मन काँप रहा है

चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः॥

ऋ. 5. 36. 3

तर्जः *अयंगार वीट अड़्येः*

अहंकार क्यूँ ना तजें (3)
मैं तो तुम्हारा स्तोता बनूँगा
अर्चना अहर्निश तेरी करूँगा
धन तो तुम्हारी कृपा का प्रसाद है
इसका मैं सदुपयोग करूँगा
करो स्वीकार भक्ति पुरुवसु की
प्रभु की कृपा है निर्झर वर्षण ले बन्दे
धूमत तुकतिक धिंना तक धूमत तकुतिक धिंना (2)
साग पनीप पध गमप पसा सा नी नीपपम मपमग (2)
तक दिक तकदिक तकदिक तकदिक, तकदिक तकदिक तकदिक
तकदिका
अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी हे इन्द्र परमात्मन् अग्रणी
पुष्कल धन की तुमसे याचनायें की
पुरुवसु बनने में तेरी कृपा बरसी
पर हुआ क्या देव! आ गया अहंकार
खुद को कहूँ स्वामी व्यर्थ जागा ममकार
प्रभु की कृपा है, निर्झर वर्षण ले बन्दे ॥अहंकार॥

किन्तु भूल गया कि तुम मुझसे कितने बड़े भण्डारी धन के
सदा धन को बढ़ाने वाले सदावृध हो
अति स्तुत्यरूप हो इन्द्र पुरुहूत हो
महा मधवा हो, तुम ही अनवर हो
हे अद्रिमान तुम ही वज्रधर हो
प्रभु की कृपा है निर्झर वर्षण ले बन्दे। ॥अहंकार॥

काँप रहा हूँ बुरी तरह भय से, मद छूटा मम पराजय से
मन दिया था तुम्हीं ने मनन स्तवन करने

पर बुद्धि मेरी क्यूँ गई घास चरने
ये भी ना सोचा, धन तो मेरा नहीं
धन तो है प्रभु का बात अब समझी
प्रभु की कृपा है निर्झर वर्षण ले बन्दे॥ ॥अहंकार॥

जो हुआ सो हुआ प्यारे प्रभु जी, अब बना हूँ स्तोता सुनो अरजी
अभिमान बताओ मेरे किस काम का
अब है केवल सहारा प्रभु तेरे नाम का
जो भी देना है चुपचाप दे दो
मुझे हृदय हारीविनय भाव दे दो
प्रभु की कृपा है निर्झर वर्षण ले बन्दे
॥अहंकार क्यू ना॥

(अहर्निश) निरन्तर (पुरुवसु) बहुत धनी जन (अग्रणी) आगे ले जाने वाला, अग्नि (पुष्कल) अधिक, प्रचुर (ममकार) मैं मैं करने का भाव, अहंकार ('सदावृध') हे सदा बढ़ाने वाले! ('पुरुहूत') बहतों से पुकारे गये, हे बहु स्तुत्य! ('मधवा') धनी परमात्मन्! (अनवर) सर्वश्रेष्ठ (अद्रिव) वज्रधर परमात्मन् (वज्रधर) पापियों को दण्ड देने वाला (दम्भन) अभिमान (मर्दन) कुचलना (घास चरना) पशु के समान होना (अरजी) प्रार्थना।

16. हे चरुण!

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः॥

अथर्व. 4. 16. 3

तर्जः *अरणियुम कदलियुम पूविड्डम काडिन्दी*

हे वरुण! हे राजन्! परिपन्न श्रेष्ठतम
विश्व में तेरे सिवा ना कोई परम
पाप निवारक है तेरा सहाय
तेरे जैसा कोई शाशक नहीं है भगवन्(2) हे वरुण!...

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म महान से महान
अलखस्वरूप हमें मानना पड़े
केवल भूमि नहीं, लाखों गुना द्युलोक
अत्यंत प्रकाशमय रचाये
महिमा दर्शाये ईश असम॥ हे वरुण!...

वाह रे वरुण! तेरा द्युलोक विलक्षण
दूर भी है और समीप भी
आध्यात्मिक रूप से, द्यौ का अधिष्ठाता
होते हुए भी प्रभु तू
हमारे अन्दर भी, है तू आसन्न॥ हे वरुण...

पार्थिव समुद्र और आकाश समुद्र
दोनो में है वरुण विद्यमान
महासागरों के, इक कण में भी
छिपा है वरुण तू
कण कण में तू, प्रभावन्॥ हे वरुण!...

महान से महान तुम्हारे स्वरूप
सूक्ष्मातिसूक्ष्म भी तद्रूप अनूप
आत्मसात होवें यदि हमारे इस मन में भी
उपास्य रूप बनके
पापों का, होवे शमन॥ हे वरुण!...

(तद्रूप) समान रूप (अनूप) विलक्षण, अनुपम (प्रभावन्) प्रभावशाली (आसन्न) मिला हुआ (असम) अतुल्य।

17. मुझ कूप पतित का उद्धार करो

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥

ऋ. 1. 106. 6

तर्जः *अरयादी अरयादी*

जगज्जननी अदिति माँ पय अमरता का पिला देना
तमरूपी कूप से मेरा निस्तार कर दे माँ!
सब देवों का पाऊँ आश्रय मैं हो गया हूँ निराश्रय
संकुचित मनोवृत्ति हरके विस्तीर्ण क्षेत्र पर पहुँचा देना॥ ॥जगज्जननी॥

मन इन्द्रियों से ज्ञान दृष्टा हूँ ऋषि हूँ इसलिये
वज्रविद्या अज्ञान की भेदक है फिर क्यों शत्रु लहु पिये

कुत्स ऋषि को शत्रुओं ने अन्धकूप में धकेला
दुराचार पाप दुर्गति के कूप में रहा अकेला
इसलिए पुकारा देवों को हे शक्तिमान मेरे प्रभु
तुम वृत्रहा हो शत्रुनाशक शरण तेरी मैं लूँ
मेरे प्रभु मेरी तुम सुध ले लेना॥ ॥जगज्जननी॥

हे शचिपते! वाणी प्रज्ञा कर्मण्यता के हो अधिपति
निज दिव्य वाणी से सत्प्रेरणा दे, हरके तमोवृत्ति
प्रज्ञावान हो निज प्रज्ञा से अन्धकूप से उबारो
हे मित्र अग्नि अदिति पृथ्वी द्यौ आदि देवताओ
मुझे सद्‌गुणों साधुजनों से मित्रता कराओ
हे वरुण रूप देव रिपुओं को पाश से बाँधो
हे अग्ने! सर्व तम तुम हर लेना। ॥जगज्जननी॥

हे मरुतो! प्राणो! झंझावात से हृदय स्वच्छ कर दो।
हे बृहस्पति ज्ञान-लषित लवणा लहरों से हृद भर दो
हे नराशंस सर्वजनो में मुझे प्रशंसित कर दो
हे सिन्धु! हृदय को मेरे गम्भीर उदार कर दो
हे पृथ्वी! मनोवृत्तियाँ का विस्तार ही कर दो
हे द्यौः तुम अपने सदृश्य देदीप्यमान कर दो
ज्योति से हृदय मेरा भर देना॥ ॥जगज्जननी॥

(पय) अमृत (निस्तार) पार लगाना (वृत्रहा) (लषित) इच्छित (विस्तीर्ण) विशाल (लवणा) अत्यंत सुन्दर (नराशंस) प्रभावान (नराशंस) अग्निदेव (शचिपति) वाणी प्रज्ञा।

18. हम तेरे सम्मुख मूढ़ हैं

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्॥

ऋ. 10. 4. 4

तर्जः *अरियादी अरियादी इन्नि इन्निनी...*

हे अग्ने! तेजोमय! ज्ञानी प्रभु! हम हैं मूढ़ तुम हो अमूढ़ विश्वपति,
क्या जानें तेरी क्या है महत्ता सांसारिक दृष्टि हम सबकी॥
॥हे अग्ने!॥

रथ घोड़े हाथी नौकर चाकर का हो जाना स्वामी,
या सांसारिक धन दौलत भूमि पुत्र-पौत्र का कामी
इन सबका पाना ही क्या महत्ता है? ये मूढ़ लोगों की है इष्टि (2)
॥हे अग्ने॥

रूपवान आत्मा क्यों सोया? क्यों नहीं तुझमें चेतनता?
आया क्यूँ और जाना कहाँ है? क्या! है लक्ष्य जनम का?
कर्मेन्द्रिय के मोहक रस के भोगों में फँस गई है वृत्ति (2)
॥हे अग्ने॥

प्रकृति युवति को चाट रहा है भोगी बना ये आत्मा
बनकर नटी ये प्रकृति युवति बढ़ा रही है वितत वासना
भोग विलासों में ऐसे ही आत्मा बनता है लौकिक आनन्दी (2)
॥हे अग्ने॥

आत्मा को प्रभु ने बनाया है विश्पति देह नगरी का वो राजा
मनबुद्धि प्राणेन्द्रिय रूप प्रजाएँ जान लें उसका नाता
साम्राज्य ईश्वर का स्थापित ही करना इस नगरी की है सिद्धि॥ (2)
॥हे अग्ने॥

सच्ची महत्ता को जानो हे आत्मन्! इन्द्रिय-स्वामी बन जाओ
हे प्यारे आत्मन्! मूढ़ता त्यागो ज्ञान की ज्योति जगाओ
पाओ अमृत रस प्रभु की शरण में वही सुलझायेंगे गुत्थी॥ (2)
॥हे अग्ने॥

(मूढ़) मूर्ख अज्ञानी (अमूढ़) चतुर, बुद्धिमान (विश्वपति) राजा इन्द्र (कामी) इच्छुक (नटी) अभिनय करने वाली (वासना) इच्छा लौकिक, सांसारिक (गुत्थी) उलझन, परेशानी॥

19. सत्य को जान

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्धयृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुपस्य वृष्णः॥

ऋ. 5. 12. 2

भजन 46

तर्जः *अरे संसार संसार*

अरे संसार संसार सत्य जीवन का आधार
है प्रकाश ही जीवन और मृत्यु अन्धकार ॥अरे संसार॥

अरे संसार संसार असत्य का त्याग कर
सनातन है सत्य प्रभु का उसको स्वीकार कर
सुख की कामना जो तुझको ऋत सत्य को वर ॥अरे संसार॥

अरे संसार संसार सत्यरूप परोपकार
मैत्री प्रेम स्नेह दया ओर त्याग बने सुसंस्कार
राग द्वेष छल ना करना ना ही स्वार्थ अहंकार ॥अरे संसार॥

अरे संसार संसार शुद्ध व्यवहार कर
कर्म इन्द्रियों का और आत्मा का एक घर
कर्म इन्द्रियाँ आत्मा की अमोल धरोहर ॥अरे संसार॥

अरे संसार संसार यज्ञरूप ओ३म्कार
ईश यज्ञ का याज्ञिक ही सत्य का करे सत्कार
पुण्य मित्र, पाप है शत्रु, पुण्य जाये ईश-द्वार ॥अरे संसार॥

अरे संसार संसार ईश्वर है निर्विकार
ईश-भक्त पाये प्रभु से यज्ञरूप सुविचार
ऋत सत्य शान्ति लाये करे सुख का संचार ॥अरे संसार॥

(सनातन) प्राचीन, पुराना (ऋत) सृष्टि (धरोहर) खजाना (यज्ञरूप) अग्नि स्वरूप, निष्काम स्वरूप (निर्विकार) दोषरहित

20 विरोधियों की पराजय

अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु-मह्यमसपत्नमेव।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम्॥

अथ. 9. 2. 7

तर्जः ***अल्लविन्च करयागनी सूर्योदयम्***

आत्मा में सङ्कल्प-बल रहे निहित परम
हो जाऊँ सपत्न रहित जागें ज्ञान-करम

सङ्कल्प-बल से मैं जागा हूँ
बाधाओं से मैं जूझा हूँ
दुर्भावों से मैं ऊबा हूँ
रिपु-संग्रामों में कूदा हूँ
तोड़े हैं गढ़ इनके दृढ़ सङ्कल्पों से, नित करके प्रण
मारमार के इन्हें खदेड़ा जब-जब आये हैं प्रक्रम
॥आत्मा में॥

करना चाहूँ मैं निर्मूल काम क्रोध मोहादि को
कर लूँ जिससे मै धारण ज्ञान यज्ञ प्रेमादि को
सत्य धैर्य संयम से देवता मुझमें बस जायें
राग अस्मिता द्वेष अविद्या मन से हट जायें
वास, बिना इनके ना होगा, दैविक भावों का
आत्मा के दृढ़ संकल्पों से हों सपत्न ही सक्षण॥
॥आत्मा में॥

केवल इच्छा मात्र से ये दुष्मन ना हारे कभी
चाहिये इन्हें हटाने में वेद-ज्ञान की महित मति
ज्ञान युक्त सङ्कल्प मनीषित आत्मा है इसमें
क्योंकि आत्मा 'वाजी' बनता रहता है उसमें
ये सङ्कल्पित आत्मा होती ज्ञान-बलों से पूर
दृढ़ सङ्कल्प ही आत्मा का बन जाता है साधन
॥आत्मा में॥

इस 'वाजी' अध्यक्ष के द्वारा मारे जाते शत्रु
निज अमोघ बल के ही द्वारा षड्रिपु पाते मृत्यु
मुझमें आत्मिय देव सहज में आके जुड़े
देके प्रेरणाये दिव्य भाव की ओर मुड़े
चाहूँ जब जिस देव को उद्बुद्ध मैं कर दूँ
हो जाये उद्बुद्ध तो मैं पा जाऊँगा प्रशम॥

॥आत्मा में॥

(निहित) स्थापित रखा हुआ (परम) उत्कृष्ट बढ़कर (सपत्न) शत्रु वैरी (प्रण) अटल निश्चय (प्रक्रम) अवसर, मौका (निर्मूल) जड़ से उखाड़ना (अस्मिता) अहंकार (सक्षण) हारा हुआ (महित) पूजित, सेवनीय (मनीषित) अभिलिक्षित, वांछित, इच्छित (वाजी) ज्ञान बल से युक्त (अमोध) सफल (षड़रिपु) शत्रु कामक्रोध लोभ मोह अहंकार मद (उद्बुद्ध) ज्ञान प्राप्त किया हुआ। (प्रशम) शान्ति

21. आचार्यरूप अग्नि में याचना

साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान्।
पदं न गोरपगूळहं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम्॥

ऋ. 4. 5. 3

तर्जः *अल्लाम गुडयिन भट्टम पाती उच्चै नाडयम्*

उत्तम ज्ञान से उत्तम कर्म से याज्ञिक कर्म करो,
पूर्ण ज्ञान इसका वेदों में इनको पढ़ो-सुनो॥
मैंने भी ये मन में सोचा,
क्यों ना लगाऊँ वेद में गोता
पहुँचा मैं आचार्य की कुटिया
मैंने बनना चाहा अगिया
तीनों समिधायें अर्पण कर दीं आचार्य को॥
सानी सामगरेग, सानी सामगरेग, सानी सामग रे गमप
पसासानी धनी, पध मम, पधमग मनीप, गऽरेगसा॥

उत्तम ज्ञान...

अरे! मेरा आचार्य था द्विबर्हा
विद्या और विनय ज्ञान और कर्म

अपरा विद्या और पराविद्या
प्रेय मार्ग और श्रेय मार्ग
इनमें वो पाण्डित्य रखता

कोमल मति के छात्रों को ज्ञान तप संयम साधना
अपनी सीख से और सामर्थ्य से शिष्य को देता सिखा
वो सहस्त्ररेता सहस्त्रवीर्य उर्ध्वरेता की बने नीव
उसपे ज्ञान भवन को बना के देता सेवित विद्या॥

उत्तम ज्ञान...

वो वृषभ व्रतों का है स्नातक
पहुँचेगा छात्र के हृदय तक
कर देगा व्रतों की व्रत वृष्टि
व्रतविद्या का स्नातक छात्र
पालेगा व्रत अधिमात्र॥

वो छात्र शारीरिक आत्मिक बल से बनेगा तुविष्मान
बेद सिन्धु के गहरे तल से मोती सा लायेगा ज्ञान
इक मन्त्र के जो हैं अनेकों अर्थ उसकी मीमांसा कर
छात्र बनेगा पण्डित, होगी, तीव्र मनीषा साम॥

उत्तम ज्ञान...

(द्विबर्हा) दो वस्तुओं का वर्धक (अगिया) अग्नि (सहस्त्ररेता) अतुल वीर्य (वृषभ) वर्षक (ज्ञान का) (साम) उपासना काण्ड व योग विधी (मनीषा) मननीय विद्या, उत्तम बुद्धि (तुविष्मान) शारीरिक व आत्मिक बल से युक्त (मीमांसा) विचारपूर्वक तत्व निर्णय (ऊर्ध्व रेता) उन्नत वीर्य को सहस्त्र कर्मों में ढ़ालने वाला।

22. तू मुझ जैसा ही

१२ ३ १२१ ३१ २३ १२ १२ ३ १२
अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः। अरं शक्र परेमणि

साम. 209

तर्जः *अष्टपदी दे नायिके यक्ष गायिके*

हे परब्रह्म परमात्मन् तुम तुम जैसे नायक हो
अति सुखदायक
वेद कहें तुम त्वावान हो,
अनुपम शक्रपावक हो
सर्वाधिक ब्रह्माण्ड के शूर हो
शत्रुओं के तुम हो शत्रुजेय
महाशत्रु भी कर सके ना हानि
अतः तुम हो अनुपम अमेय
शक्रदेव हे शक्रदेव
वेद कहें तुम त्वावान हो, आ ऽ ऽ ऽ
हे परब्रह्म परमात्मन्...
परमेश्वर्यशालिन भगवन्
करें यशोगान तेरा सब हम
गूँज उठे यशोगान की लहरें
जड़ चेतन में हो तेरा प्रतिश्रव
शक्रदेव हे शक्रदेव!
वेद कहें तुम त्वावान हो, आ ऽ ऽ ऽ
हे परब्रह्म परमात्मन्...
तव प्रेरणा से शोभित होके
होवें पराविद्या में प्रवृत्त
अक्षर ब्रह्म की अनुभूति से
होवे पराविद्या सतत समृद्ध
शक्रदेव हे शक्रदेव!
वेद कहें तुम त्वावान हो आ ऽ ऽ ऽ
हे परब्रह्म परमात्मन्....

(त्वावान) त्वत्क्षदृश, तुम जैसे (शक्र) शक्तिमान (शूर) पराक्रमी (अमेय) सीमारहित, असीम (प्रतिश्रव) सहमति, गूँज (अनुभूति) अनुभव (समृद्ध) फलता फूलता, हरा-भरा, भाग्यशाली।

23. वह सबको मार्ग दिखाता है

ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात्।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम्॥

ऋ. 1. 104. 2

तर्जः *आँखों से दूर दूर पर*

ना देखें नयन फिर भी हृदय के पास हो
कौन हो तुम प्रभो! कौन हो तुम प्रभो!
मन हृदय और चित्त के तुम्हीं प्रकाश हो
तुम ही ममता हो तुम ही प्यार हो॥

बेचारे कब से मानव फिरते हैं दर बदर (2)
सब अपने अपने मार्ग की करें लल्लो चप्पो॥ (2) ॥तुम ही ममता॥

भ्रम में पड़ा नवागन्तुक माने किसकी बात? (2)
क्या करें? ना करें? परिस्थिति है अधो (2) ॥तुम ही ममता॥

अवसर ना चूकते हैं मनीषी-विवेकी जन (2)
जाते हैं इन्द्र-द्वार पे तो जागती है लौ (2) ॥तुम ही ममता॥

हे 'इन्द्र' मार्गदर्शक अज्ञानता से दूर (2)
ले जायेगा सुपथ पे तुम उसके संग रहो (2) ॥तुम ही ममता॥

सब देव उसकी शीतल छाया में जा बसे (2)
सिद्धियाँ प्रयोजनों की हुईं प्रभु-सौं (2) ॥तुम ही ममता॥

प्रभु-'सासहि' है जो करे जीवों का कल्याण (2)
अपराध पापीयों के भी पी रहा है वो (2) ॥तुम ही ममता॥

प्रेरित प्रभु से भक्त है पाते प्रभु का रंग (2)
उपदेश देते उत्तम कहते सभी जगो (2) ॥तुम ही ममता॥

क्षत्रिय दण्ड देता, ब्राह्मण तो करता प्यार (2)
उस दण्ड-प्यार-सार को समझो ग्रहण करो (2) ॥तुम ही ममता॥

(लल्लो चप्पो) किसी को प्रसन्न करने के लिए खुशामद (सौं) के द्वारा (नवागन्तुक) नया नया आया हुआ (विवेकी) सत्यासत्य जानने वाला (अधो) गिरी हुई (मनीषी) बुद्धिमान (लौ) प्रकाश की बाती (सासहि) सहनशील।

24. यज्ञ पुरुष का नाद

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥
साम. 525. 859 ऋ. 9. 97. 34

तर्जः *आँचल में फूल चाँद सितारे सजा लिए*

ऐ जान! तुझमें आग के शोले सजा लिये (2)
जिस आग ने जगत को सहारे अता किये॥ ॥ऐ जान!॥

जितनी है तुझमें आग जगत-यज्ञ में ले भाग
आदि से तुझको अन्त तक पाना पड़ेगा ताप
दे दे के ताप अणु से परमाणु पा लिये॥ ॥ऐ जान!॥

'अ' 'उ' से और 'म' से ज्वालिन हुआ है ओइम्
संगीत का सुरीला इसमें बसा है सोम
साधक ने इसमें जाप के तराने मिला लिये॥ ॥ऐ जान!॥

छोटी से छोटी चाल में प्रभु ने दिया है साथ
अपने जीवन की तार में साधक जगाता नाद
कितनों ने प्रणव जाप से जीवन तरा लिये॥ ऐ जान॥

सृष्टि का ऋत ही यज्ञ है, देता जो प्रेरणा
यजमान ही जगा रहे ऋत-सत्य-धारणा
आनन्दमय प्रभाव उन्होने जगा लिये॥ ॥ऐ जान॥

आनन्दमय है प्रेरणा संगीत जिसमें सोम
इसके सुरीले स्त्रोत को सुनते हैं ध्यानी मौन
गौ को सुनाते बाँसुरी जैसे ये ग्वालिये॥ ॥ऐ जान॥

(जान) आत्मा (शोले) धधकती आग (अता) कृपा, ब्रह्मस्वरूप घोष (प्रणव) ओइम् (ऋत) सृष्टि-नियम (ग्वालिये) गाय चराने वाले, गोप, गौ-रक्षक (चाल) गति, रीति, आचरण व्यवहार।

25. हे सोम! मेरी मनोभूमि पर वर्षा करो

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः। वृष्टिं दिवः परि स्रव॥

ऋ. 9.39.2

तर्जः *आज उदास उदास दूर चान्दण्या साउन*

प्यासी धरती है वर्षा अपूर, कण्ठों से उठी है पुकार
अपरिष्कृत है बीज और मूल, कैसे फसलों में होगी बहार॥
॥प्यासी धरती॥

बीज अङ्कुरित होंगे अपार, करें वारिद यदि वर्षा (2)
हो वृष्टि-सिक्त भूमि, तल भूमि का तरसा
कुछ बढ़ेंगे पूर्ववत् पल्लवित ये झाड़ झंखार॥ ॥प्यासी धरती॥

आध्यात्मिक वर्षा की मेरी है प्यासी ये मनोभूमि (2)
हे वर्षा के अधिपति रसोमय सोम प्रभु अग्रणी
आनन्द वर्षा का मानस में करो संचार॥ ॥प्यासी धरती॥

उदासीनता तन्द्रा प्रमाद अस्मिता राग-द्वेष-अभिशाप (2)
मन में मालिन्य है आज उसे करना चाहूँ साफ
दो सहायता दिन रात, करो प्रभु कृपा अपार॥ ॥प्यासी धरती॥

प्रभु चलाओ झंझावात निर्मलता का मानस में (2)
भर दो धृति अहिंसा अस्तेय क्षमा मेरी नस नस में
करो हृद-मालिन्य को पवित, भरो आध्यात्म-विचार ॥प्यासी धरती॥

मैं अभीष्ट गुणों के बीजों से तैयार करूँ हृद-भूमि (2)
आनन्दमय आध्यात्मलोक से वर्षा करो महागुणी!
बरखा बरसा, सरसा, हे मेरे आनन्दागार!॥ ॥प्यासी धरती॥

आत्मा मन बुद्धि प्राण सर्वेन्द्रियों को कर दो स्नात (2)
सब अङ्ग प्रत्यङ्ग हों स्फूर्त हर लो सारे सन्ताप
हे आह्लादक वर्षिन् तेरा कोटि कोटि आभार॥ ॥प्यासी धरती॥

(अपूर) अपूर्ण (अपरिष्कृत) अपवित्र (वारिद) मेघ, बादल (सिक्त) तर किया गया (अग्रणी) मुख्य नेता (तन्द्रा) नींद (प्रमाद) आलस्य (अस्मिता) अहंकार (धृति) धैर्य (अस्तेय) चोरी (अभिशाप) कोसना (मालिन्य) अपवित्रता (झंझावात) वर्षा सहित तीव्र आँधी (अभीष्ट) मनोनीत इच्छा (हृद) हृदय।

26. इन्द्र सबसे महान

प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात्प्र समुद्रस्य धासेः।
प्र वातस्य प्रथसः प्रज्मो अन्तात्प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः॥

ऋ. 10. 89. 11

तर्जः ***आज कुणीतरी यावे ओऽ तिथे वापे***

महिमा इन्द्र की गायें
इन्द्र तुझे ही ध्यायें ॥महिमा॥

कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष की
काली और चाँदनी रातें
चाँदनी मधु छटकाये ॥महिमा॥

झिलमिल चमके तारकावलि
कौन ना मुग्ध हो देख प्रभु-कृति
द्यौः द्युतिमय हो जाए॥ ॥महिमा॥

प्राची से उज्ज्वल उषा की
किरणें छा जातीं धरणी पर
प्रखर ज्योति रवि लाए॥ ॥महिमा॥

करे निर्माण दिवस-दिवाकर
पाते उससे प्राण परम्पर
जीवन ज्योति जगाये॥ ॥महिमा॥

उषा दिवस साँझ से उत्तम
इन्द्र की महिमा महत् दिव्यतम
वही ज्योति फैलाएँ॥ ॥महिमा॥

अन्तरिक्ष बिच बिजुरिया चमके
पवन संग पर्जन्य भी सरसें
मेघामृत बरसाये॥ ॥महिमा॥

अन्तरिक्ष के खेल निराले
चुटकी बजा के खेलने वाले
सूत्रधार बन आये॥ ॥महिमा॥

विपुल वारिन्द्र बृहत् का आश्रय
करे पर्जन्य, पयस का परिग्रह
रत्न कुक्षि में जुटाये॥ ॥महिमा॥

वेगिन वायु सर्वत्र प्रोथ है
गन्ध वाहक प्राणों का स्त्रोत है
श्वास श्वास में समाये॥ ॥महिमा॥

प्राणियों की माता धरणी है
गर्भ में रत्न जड़ित रहती है
अमृत स्त्रोत बहाये॥ ॥महिमा॥

वनस्पति, वन की है वनिता
अन्नदात्री धनदायी वसुविता
अंकुरण स्थली है माये॥ ॥महिमा॥

इस वायु-वसुधा से बढ़कर
मेरे इन्द्र की महिमा अतिशय
इन सबको जो चलाये ॥महिमा

कलकल करती किलकत सरिता
करे धरा को सस्य-श्यामला
हिम शिखरों से आये ॥महिमा॥

सिन्धु से जल को ले जाकर,
नभ में मेघ रूप बनाकर
इन्द्र मेघ बरसाये ॥महिमा॥

है विचार उसके सङ्कल्पित,
आविष्कार अनेक अचम्भित
चकित जगत हो जाए ॥महिमा॥

पर मनुष्य से महेन्द्र है महत्
जिसकी शोभा अनुपम सर्वत्
चहुँ दिशी ललित लीलाएँ ॥महिमा॥

(विपुल) विस्तृत (वारिन्द्र) सागर (पर्जन्य) मेघ (माये) माता(वनिता) प्रियतमा (ललित) सुन्दर, मनोहर (पयस) जल (कृति) कार्य (प्राची) पूर्व (कुक्षी) कोख (वेगिन) भ्रमण करना (वनिता) प्रियतमा (धरणी) पृथ्वी (प्रखर) तज, तीक्ष्ण (दिवाकर) सूर्य (परम्पर) उत्तरोत्तर (सूत्रधार) व्यवस्थापक (वसुविता) आश्रयदात्री (किलकत) हर्षित (परिग्रह) अनुग्रह, कृपा, दान (प्रोथ) स्थापित (प्रोथ) पथिक, पथ पे चलने वाला।

27. परमप्रिया सच्चिदानन्द रूपिणी परमात्मदेवता

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।

ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥

अथर्व. 10. 8. 25

तर्जः *आज माझे हे भाग्य उजड़ले*

मेरे प्रेम का असली भाजन है परमात्मा या संसार है?
प्रेम की शक्ति मिली जो मुझको, क्या है प्रयोजन क्या आधार है?
॥मेरे प्रेम का॥

खोजा है संसार तो केवल तीन तत्व ही मैं पाता हूँ
एक तो परम अणुरूप है (2) दूजा अभौतिक मैं आत्मा हूँ (2)
तीजा है परमात्मा विदेही (2) सर्वव्यापक सर्वाधार है॥
॥मेरे प्रेम का॥

निरानन्द है दृष्य प्रकृति कैसे प्रिय हो सकती मुझको
स्वयं देखने वाला कैसे (2) प्रेम का विषय बनाये खुद को
और प्रकृति सच्चिदानन्द (2) में प्रभु ही आनन्दाधार है॥
॥मेरे प्रेम का॥

आत्मा में परिष्वक्त है ईश्वर बने आत्मा का आत्मानन्द
ज्ञान प्रकाश रहित ये प्रकृति (2) और पदार्थ है निरानन्द (2)
धन-ऐश्वर्य भरी प्रकृति भी, प्रभु के सम्मुख असार है।
॥मेरे प्रेम का॥

इस प्रकृति के रूप में फँसकर ना अपने ईश्वर को भुलाऊँ
प्रभु की ओर ही दौड़ लगाके (2) अपने हृदय में उसे बिठाऊँ (2)
होगा तभी प्रयोजन पूरा जहाँ मैं वही प्रभु प्यार है॥
॥मेरे प्रेम का॥

(भाजन) पात्र (विदेही) बिना देह का, हेह शून्य (निरानन्द) आनन्द शून्य, बिना आनन्द का (परिष्वक्त) व्यापा हुआ, आलिंगन किया हुआ।

28. गो-लोक

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरेः॥

ऋ. 9. 68. 1 साम 563.

तर्जः *आरुड़े नष्ट प्रणयत्तिन तेन्नलन, सारंगी*

गायों के थनों से दूध-छलक रहा आनन्दी,
दो घूँट पी लेने दो।
हृदय का मुख है खुला
ज्ञान भी ऋत का हुआ
ज्योतियों का हुआ आगम
ज्योतियाँ कल्याणी
अद्‌भुत प्रकाशित हुईं
कैसी मनभावनी
सारी दिशाओं से आ धिरीं॥

गायों के...

वेदों ने किरणों को दी गौ की उपमा, रसभरी आर्द्र इनकी महिमा (2)
आध्यात्म-सूर्य की है दुधेल गायें सृष्टि के यज्ञ की हैं ये प्रतिमा (2)
हवियाँ उँडेल दी यज्ञ की वेदी पर, रस से उद्‌बुद्ध हुईं यज्ञ की समिधा॥

गायों के...

ऋतम्भरा की दृग चलनी में पड़कर दूध गायों का तो छनता है (2)
छनकर जब ये परिष्कृत होता, सुख दिव्य, पीकर मिलता है (2)
यह दूध, मरुत्वान् इन्द्र में रमकर, पवित्र सब इन्द्रियाँ करता है॥

गायों के...

सोम सरोवर उसी के लिए है, जिस इन्द्र को भा जाता प्रकाश (2)
आध्यात्मिक स्वर्ग का अन्तःकरण में इन ज्योतियों से होता

आभास (2)
भोग विरक्ति ना है इसका साधन, आत्म दर्शन से ही बुझती है प्यास॥

गायों के...

भोग आधिक्य या भोग अभाव ही बार-बार देता तृष्णा को जनम (2)
भोग के यज्ञाहुति में समर्पण से होते स्वयं हमें आत्मदर्शन (2)
याग की भूमि ही गोलोक है सच्चा मोक्ष का सच्चा ये वैदिक दर्शन॥

गायों के...

दूजे के उदर में अपनी ही भूख का प्रसन्न चित्त से कर तू दर्शन (2)
फेंक नहीं धन को, बाँट देना धन अन्न, हर प्राणी मात्र में ला अपनापन (2)
हरी भरी यज्ञ की वेदी पे बैठा तू, दाता ही बन के कर याज्ञिक-यजन॥

गायों के...

गो-लोक के तू सिंहासन पे बैठ-जा बन जा तू सबका अभिरामी
मस्ती का पीने को मिल जाए, तुमको, अमी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

(गौ) गाय, आत्मा, इन्द्रियाँ, परमात्मा (ऋतम्भरा) सर्वोत्तम बुद्धि (दृग) देने की शक्ति (आगम) आना (अमी) अमृत (गो लोक) आत्म लोक।

29. द्रविणोदा अग्नि

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः।

अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥

ऋग्. 1. 96. 6

तर्जः *आलपूविड़यिल वेन्निला पुड़यिल लास्यमा मड़युम सुरभीरात्री*

'द्रविणोदाग्नि' कर ले धारण
परमेश्वर ही इसका कारण
अनुराग भरा प्यारा प्रीतम
जीवात्मा का वो मन्मसाधन' (है)
उसका करें स्मरण॥ ॥द्रणिणे दाग्नि॥

द्रविणोदाग्नि का केतु अगर तुम पूछते हो है कौन?
धन बलों का है दाता यज्ञ-प्रज्ञापक ओइम्!
सोना चाँदी मोती रत्न या हो हीरा
मूल स्त्रोत प्रभु है वसुओं से भरा
अग्नि वायु अन्तरिक्ष द्युलोक नक्षत्र चंद्रमा धरा॥ ॥द्रविणो दाग्नि॥

अहिंसा सत्य तप आदि ऐश्वर्यों का है प्रज्ञापक
बनके यज्ञ-केतु वो ही लहरा रहा है, सेवक
उसको सम्मुख रख के आत्मा व्रत लेता
इन व्रतों को पूर्ण करता विश्व-नेता
सच्चे देव ज्ञानी जन साधक पाते उसकी कृपा॥
॥द्रविणो दाग्नि॥

आओ दिव्यता के पुजारियो, ऐसे प्रभु को ध्यायें
मोक्षरूपी अमृत के हेतु उसकी महिमा गायें
अमृतत्व पाके जीवन्मुक्त हो जायें
द्रविणोदाग्नि को निज अङ्ग बनायें
श्रद्धा से इस अग्नि स्वरूप में रम जायें॥ ॥द्रविणोदाग्नि॥

(द्रविणोदाग्नि) धन और बल का दाता परमेश्वर (मन्म साधन) विचारित कार्यों को सिद्ध करने वाला (केतु) प्रज्ञापक (प्रज्ञापक) सूचक, बोधक, जानने वाला

30. हम उससे ऐश्वर्य माँगते हैं

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम्।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे॥

ऋ. 3. 2. 15

तर्जः *आवडी तुम्बी तामर तुम्बी*

क्या कभी तुमने धन ऐश्वर्यों की (2)
रुपया पैसा सोना चाँदी की इच्छायें की?
यहाँ का यहीं पे रह जाएगा ज़िन्दगी बोझ बनी॥
पा के सब, ना मिली, शान्ति सुख चैन भी
न कटा सुख से दिन ना ही नींदे रैन की (हाय)
आपाधापी किरकिरी, दुःख का सागर दुस्तरी (2) क्या कभी...

जिन्दगी गुज़री सस्ती, ना पाया आनन्द, मस्ती को
बीच खड़ी मँझधारे उस पार ना लाया कश्ती को
काम काज धन्धे, तेज कभी मन्दे
कर दिये प्रभु मिलन के रास्ते लम्बे
ना फकीरी का आलम ना प्रभु मिलन का आनन्द
आपाधापी किरकिरी दुःख का सागर दुस्तरी (2) क्या कभी...

पुत्रैषणा वितैषणा लोकैषणा में उलझाया मन
लम्बी दौड़ का घोड़ा तृष्णा में भूला भटका मन
लोकहित है ऊँचा धन, सम्पदा सर्वोपरि प्रपन्न
इसमें है वैश्वानर भगवन् आओ इसमें लगायें मन
याचना करते प्रभु से पायें उभय विध ऐश्वर्य हम
रसभरी वाणी वेद की, बौद्धिक याज्ञिक वेग की (2) क्या कभी...

प्रभु आह्लादायक बरसाता आनन्द की फुहार
मन्द्र स्वभाव है उसका दिव्यगुणों का है दातार
अकुटिल शुद्ध है एकरस करता है दुष्टों को भी ध्वस्त
सर्वदृष्टा है स्तुत्य सखा पहुँचा देता है लक्ष्य तक
सत्य शिव सुन्दर के धनी से माँगे ऐश्वर्य धन
झोली सबकी वो भरे, हर प्राणी का हित करे (2) क्या कभी...

(दुस्तरी) पार न लगाने वाला (आपाधापी) खींचातानी, लड़ाई-झगड़ा (किरकिरी) अपमान (आलम) लोक संसार (पुत्र-वित्त लोकैषणा) पुत्र-धन-यश की इच्छायें (उभयविध ऐश्वर्य) भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नत ऐश्वर्य (सर्वदृष्टा) सबको भली-भाँति जानने समझने वाला (वेग) प्रवाह।

31. आओ वृत्र को जीतें

इ॒दं स्व॑रि॒दभि॒दा॑स वा॒यम॒यं प्र॑का॒श उ॒र्व१॒॑तरि॑क्षम्।
हना॑व वृ॒त्रं नि॒रे॑हि॑ सोम ह॒विष्ट्वा॒ सन्तं॑ ह॒विषा॑ यजाम॥

ऋ. 10. 124. 6

तर्जः *आबडी तुम्बी तामर तुम्बी मारतुन*

पाप की वृत्ति क्यों नहीं हटती (2)
इस वृत्ति को त्यागें भी तो आ पलटती
सत्य अहिंसा त्याग वृत्ति के आड़े अड़ती
पाप से कब तलक सहते जायें दुःख ही दुःख
बस्तियाँ सद्विचारों की क्यों उजाड़ें ख़ुद
भीतरी बाहरी उपरी वृत्तियाँ विचलित अनभली
फिर क्यों धरते व्यर्थ में पाप की वृत्ति मनचली (2) पाप की वृत्ति...

घर से निकल हे आत्मन् हम रणभूमि में डट जाएँ (3)
दोनो मिलकर हम तुम वृत्रासुर का वध कर पायें (3)
मुझमें हिम्मत है बड़ी, दृढ़ संकल्पों से जड़ी
मेरे आगे रिपुदल के छूटेंगे छक्के अभी
और फिर तुम भी हो शक्ति के भण्डारी हे बली!
फिर क्यों धरते व्यर्थ में पाप की वृत्ति मनचली (2) पाप की वृत्ति...

आत्मबल के आगे बड़े शत्रु भी झुक जाते हैं (3)
शस्त्र भी उनके आगे कृश-कुण्ठित होते जाते हैं (3)
अपनी शक्ति को तुम, जल्दी पहचान तो लो
विजय उल्लास खड़ा, लेके तेरी शान को
सुखद सौन्दर्य प्रकाश का कार्य-तीर्थ ओजस्वी
फिर क्यों धरते व्यर्थ में पाप की वृत्ति मनचली (2) पाप की वृत्ति...

तुम हवि बनकर आत्मज अन्तस् समर में कूद पड़ो (3)
निश्चित बनोगे विजयी ललित मनोहर कृत्य करो (3)
बुद्धिमन ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राण और कर्मेन्द्रियाँ
भाल पे विजय तिलक की, होंगी तैयारियाँ
होगा अभिनन्दन वन्दन गायन कीर्तन अनुनयी
बनोगे राज सिंहासनी गूँज उठेगी सत्कृति (2)

(कृश) शक्तिहीन (कुण्ठित) मन्दीकृत (समर) युद्धस्थली (अनुनयी) नम्र निवेदन युक्त (सत्कृति) सच्चे कार्य।

32. सोम प्रभु की महिमा

त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः॥

ऋ. 1. 91. 2

तर्जः ***आसावा असा सुखी संसार***

बनाया काव्य रूप संसार, (2)
शुभ-गुण प्रेरक, कर्म-सहायक
जीवन रूप आधार॥

अद्भुत गुण-कर्मों का योग है, सत्य शिव सुन्दर प्रभु निर्दोष है,
उसे जान, श्रद्धा से झुकता, मस्तक बारम्बार॥ ॥बनाया॥

विश्व के कण कण में प्रभु व्याप्त, घटनाचक्र जगत के ज्ञात
कर्म विकर्म जाने जग-जन के, जाने सब व्यवहार॥ ॥बनाया॥

है आदर्श रूप प्रभु सुक्रतु, और वेदों को दिया जनु
कला शिल्प कौशल व चातुर्य, प्रतत तेरे चमत्कार॥ ॥बनाया॥

तरु-वल्लरि में फूल-पत्ति में, भूमि आकाश में चाँद तारों में
देखूँ जहाँ बस तू ही तू है, अनन्त है पारावार॥ ॥बनाया॥

ज्ञान कर्म तेरे आदर्शित, रखता है ब्रह्माण्ड व्यवस्थित
दिशा समय कर्मों का साक्षी, दक्षता बल है अपार॥ ॥बनाया॥

बेबस प्राणी तेरे शरणागत दुर्जन होते स्वयं हताहत
ऋत और सत्य चहुँ दिशी फैले जिनका तू आधार॥ ॥बनाया॥

सोम-सुभग सुख की वर्षा कर, बरसे जल, विद्या, धन, निर्झर
विनय, सत्य, दया न्याय रक्षा की चहुँ दिशी छाए बहार॥ ॥बनाया॥

हे प्रभु! तुम तो द्युम्न-बली हो, तेज अन्न धन यश के धनी हो
तुम प्रशस्य अरु वन्दनीय हो, नमन करो स्वीकार॥ ॥बनाया॥

(प्रशस्य) उत्तम, श्रेष्ठ, प्रशंसा योग्य (सुक्रतु) कर्मशील (प्रतत) विस्तृत फैला हुआ (तरुवल्लरि) लता (पारावार) सीमा हद (द्युत्म-बली) सूर्य समान बलवाला (जनु) जन्म उत्पत्ति (चातुर्य) चतुरता (विकर्म) उलटे या खोटे कर्म (आदर्शित) दिखलाया हुआ (दक्षता) योग्यता (साक्षी) ।दर्शक (हताहत) मार खाना (ऋत) सृष्टि नियम (सुभग) आनन्द दायक।

33. नाना के तेजों से अपने को महातेजस्वी बनाना

२उ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सं सृजामसि॥

सामः 624

तर्जः *इडिगडिकोडी अभिनयन मनकरी अभिनयन*

मैं पूरा वर्चस्वी बनूँगा
संग्रह हर वर्चस करूँगा
सत्यस्वरूप ब्रह्म वर्चस से
निज को पूर्ण संयुक्त करूँगा
तेजस-पदार्थ सेवन-यथार्थ
ब्रह्मचर्य-भास
दैहिक वर्चस को भर लूँगा॥ ॥मैं पूरा॥

इन्द्र के द्वारा इन्द्रियों के
संयम से वर्चस बढ़े
विषय भोग में पड़ने से
आभा तेज तो क्षीण रहे
पायें अद्भुत आत्मिक तेज
सत्य ज्ञान के धारक बनें
सत्यस्वरूप ब्रह्म तेज भरूँगा ॥मैं पूरा॥

ब्रह्मतेज को पाकर के
अनन्त आत्मज्ञ चमक उठे
मन ओर देह को सहज में
तेजोमय दृढ़ बना सके
संसार में तब चमकती हुई
प्रदीप्त ज्योति लिये फिरूँ
जो संपर्क में आये उसे चमका दूँगा॥ ॥मैं पूरा॥

(वर्चस) वीर्यबल, प्रकाश शक्ति (तेजस) प्रभा, चमक (भास) प्रकाश (आत्मज्ञ) आत्मा को जानने वाला

34. संसार भगवान की कीर्ति

अस्य श्रवो नद्यः सप्त विभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धं कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥

ऋ : 1. 102. 2

तर्जः *इथेच काशी इथेच ईश्वर*

जहाँ भी देखो वहीं है ईश्वर, यशोगान गाती हैं नदियाँ,
सागर परिचय प्रभु का देते, प्रभु महिमा चहुँ ओर,
सृष्टि की प्रभु के हाथ में डोर ॥सृष्टि की॥
द्यावा पृथ्वी अन्तरिक्ष सब, जगदीश्वर की काया
व्याप्त है इन सबमें परमेश्वर, अद्भुत जिसकी माया
वात्सल्यों का अमृत देते, देते सुख चहूँ ओर ॥सृष्टि की॥
भूमि पादतल परमेश्वर का, उदर अन्तरिक्ष सोहे
शीर्षस्रूप है द्यौः ईश्वर का, परमब्रह्म मन मोहे
सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर को करें नमस्कार कर जोड़ ॥सृष्टि की
सूर्यचन्द्र हैं प्रभु की आँखें, अगिन प्रभु मुख होती
वायु जिसके प्राण अपान हैं, किरणें दृष्टि सम होतीं
बने प्रज्ञानी सर्व दिशायें, ज्ञान की बनती स्त्रोत ॥सृष्टि की॥
सूर्यचन्द्र विपरीत दिशा से, उदित होके सुख बाँटें
बुद्धिमान ही केवल जाने, प्रभु सृष्टि के नाते
जो प्रभु की सत्ता ना जाने, वो अज्ञानी घोर ॥सृष्टि की॥
माटी का ढेला गल जाये, जब जब जल में डालें
चहूँ ओर पृथ्वी के जल है, पृथ्वी घुल ना पाये
कैसी लीला परमेश्वर की, पले पृथ्वी प्रभु गोद ॥सृष्टि की॥
जो पदार्थ अग्नि में जाये, अग्नि उसको जलाये
लेकिन देह में व्यापक अग्नि, जीवमात्र को जिलाये
कहीं प्रकाशे कहीं जलाये, कैसी अद्भुत शोध ॥सृष्टि की॥
एक से एक पदार्थ प्रभु का, कैसा विलक्षण अद्भुत
वैज्ञानिक ना प्रभु सा कोई, अनुसन्धानी अचम्भित
मानव कल्पना कुण्ठित होवे, पाये ना प्रभु का छोर ॥सृष्टि की॥

(पाद तल) चरण (प्राण अपान) स्वाच्छाश्वास (विलक्षण) विवेकपूर्ण (अचम्भित) आश्चर्यचकित (अनुसन्धानी) जाँच पड़ताल करने वाला।

35. मधुरफल खाने वाला पंछी

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद॥

ऋ. 1. 164. 22

तर्जः *इदिले तोडी निन पादयिरिन्नुरु*

स्वादु फल को, क्यों नहीं खा पाते?
क्या है विडम्बना! क्या है विवशता?
क्यों कर जान नहीं पाते?
भोले क्यों तू नहीं जाने
अपने पिता की स्नेह सुगन्ध को
क्यों नहीं लगता पाने
जो भी हो उस ईश्वर पर ही
पूर्ण विश्वास रख
करता है शुभ कर्म सुहाने, जो भी जो भी,
जो भी हो ईश्वर से

एक वृक्ष पे बैठे दो पंछी, इक साक्षात् है दृष्टा
दूजा वृक्ष पे बैठा खा रहा है फल भोग ही कर्म है जिसका
मानव है सदा सजातिय
और ईश्वर सदा विजातिय
आत्मा रूप जो है पक्षी
लेता है जन्म सतत् ही...भोगी भोगी भोगी
स्वादु फल को...

केवल मधुभक्षी नहीं, मानव, करता है सन्तानोत्पत्ति
पर ये योनी है भव्य अत्युत्तम, पाता है ज्ञान कर्म भक्ति
पशु-पक्षी भोग ही करते
कर्म केवल उड़ते फिरते
कुछ मानव भोग में डूबे

कुछ है विषयों से उबे, बोधी बोधी
जो भी हो ईश्वर से...

कड़वे मीठे फल खाये मानव, मिला है जो भी जीवन
कड़वे में मीठास का अनुभव, लाता मनुष्य में दीपन
प्रभु-भक्त ही ऐसा केवल
भोगों को बनाता निर्मल
'ईश्वर तेरी इच्छापूर्ण हो!'
दयानन्द से ऐसे गुण हों... योगी योगी
जो भी हो ईश्वर से...

जो भी परम पिता प्रभु का रहता जीवन भर विश्वासी
वो चाहे तो धर्म के हित में भोग में रहे ना पापी
धर्मपूर्वक करे आस्वादन
प्रेय मार्ग भी हे मनभावन
भोगों से हो कर उपरत
चाहे पाये मुक्ति-तीरथ, मोक्षी मोक्षी,
जो भी हो ईश्वर से...

(उपरत) मुक्त (दीपन) प्रकाशित करने का कार्य।

36. मेरी झोली भर दो

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥

ऋ. 8. 61. 7

तर्जः *इदिले तोड़ी निनपादयि रिन्नूरुपूमर*

भर दो, झोली, ये माँग रहा हूँ, देने के लिए दान
बनना है यज्ञ के द्वारा मुझे यज्ञकाम
हे प्रभु! मैं आज तुम्हारे आगे झोली, रहा हूँ पसार
तुमसे सहाय रहा हूँ माँग
देदो परोपकार के हेतु

वरना क्या है इससे कोई अन्यथा काम॥
भर दो झोली, झोली, झोली॥

कहते हैं चलते रहने वालों को मिलता है मधुर स्वादु फल
सूर्य कभी असलाता नहीं है, इसलिये रहता प्रकाशित प्रबल
बना चेरू चलते चलते पुरुषार्थ करते करते
मिल जाये मेरे पुरुषार्थ को जीवन में मधुर सुफल
॥भर दो झोली॥

मिल जाते हो तुम पुरुषार्थ से, इसलिये तुमको बुलाऊँ
तुम कहते हो मुझको पाकर, करूँगा क्या ये बताऊँ
आ प्रभु मैं तुझे बताऊँ, तुमसे धन क्यों कर पाऊँ?
पाकर तुमसे पूजित धन सत्कार्य में इसे लगाऊँ॥
॥भर दो झोली॥

इच्छुक हूँ गौओं अश्वों का ऐश्वर्य अद्‌भुत दे दो
इन्द्रिय तेज, अध्यात्मिक ज्योति, भूमि विद्या दे दो
प्राणेन्द्रिय अस्त्रबल दे दो, हे प्यारे धनेश, दे दो
वेद दुधारू गौ के थनों से मुझे दुग्धामृत दे दो
॥भर दो झोली॥

संग प्रार्थना के मैं जानूँ किया पुरुषार्थ तो दोगे
चेरू तो हूँ पहले से अब पुरुषार्थ मेरा देखोगे
तेरी कृपा पा ली है भगवन् लग गए भरने झोली
यज्ञ काम अब मुझे बनाकर आशा कर दो पूरी॥
॥भर दो झोली॥

(चेरु) विचरण कर्ता, पुरुषार्थी।

37. हे नरो! मोक्ष अभिलाषियो, इन्दु का गुणगान करो

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते

ऋ. 9. 11. 1

तर्जः *इन स्वासत्तिल कादिलिन वासम*

मन श्रद्धा भक्ति से ईश्वर का गुणगान गायें
वो देवों से महान यज्ञ कर्म ही करवायें
मन में ही शान्ति आह्लाद भरो
सौभाग्य सुख प्राप्त कर लो।

मन श्रद्धा...

जब वो उन देवों के पुरुषार्थ कर्म को देखा करता है
तो स्वयं सहायता सर्वप्रकार से उनकी किया करता है
उसको पावन करना इस 'इन्दु' का है काम
देता है वेदों के द्वारा मुक्ति का भी धाम, आ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
वह 'इन्दु' स्वयं है चन्द्रतुल्य शान्त आह्लादक अभिराम॥

॥मन श्रद्धा॥

इस कारण हमको रमण न करना चाहिये इन सब विषयों में
इससे उपर उठकर पावन कर्म करें निज हृदयों से
उसके संसर्ग से मिले शान्ति आह्लाद
श्रद्धा भक्ति से करें उपासना श्राद्ध
और सांसारिक सुख, आन्तरिक झाँकी का मिले प्रणीत प्रसाद

॥मन श्रद्धा॥

(आह्लाद) अति आनन्द (संसर्ग) सम्पर्क, संयोग (प्रणीत) सामने उपस्थिति (इन्दू) चन्द्रमा।

38. वर्णाश्रम-मर्यादा की प्रकाशिका उषा

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया, इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥

ऋ. 1. 113. 6

तर्जः ***इनियुम कोदीयोड़ कातिरी क्यान्यान तामर तण लिन***

देखो प्राची में खिली हुई उषा व्याप्त ज्योतियाँ करती
रात के अन्धेरे में सोये हुए लोग, नींद से पाते हैं निवृत्ति॥
देखो प्राची में...

चारों वर्ण के लोग जाग रहे हैं, कर रहे हैं प्राप्त निज इष्टि
चारों आश्रम कर्म में जुटे हैं, लगे हैं पाने क्रतुकर्म तृप्ति
ब्रह्मचारी गृहस्थी वानप्रस्थी सन्यासी, पा रहे आश्रम मर्यादा ज्योति
पा रहे आश्रम-मर्यादा ज्योति॥
देखो प्राची में...

ब्रह्मचारी वर्ग आचार्यों से विद्या, श्रवण ध्यान से कर रहे हैं
बड़े बड़े यज्ञों का आयोजन नियम पालन गृहस्थ कर रहे हैं
वानप्रस्थ जन आत्मनिरीक्षण व उपदेशामृत वर्षा करते सन्यासी
उपदेशामृत वर्षा करते सन्यासी॥
देखो प्राची में...

(निवृत्ति) रोक (इष्टि) इच्छा (क्रतुकर्म) संकल्पित कर्म

39. पुरोहित अग्नि

अ॒ग्निरु॒क्थे पु॒रोहि॑तो॒ ग्रावा॑णो ब॒र्हिर॑ध्व॒रे।
ऋ॒चा या॑मि म॒रुतो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ दे॒वाँ अवो॒ वरे॑ण्यम्

ऋ. 8. 27. 1

तर्जः *इनियुम को दियोड़ कातिरी क्याम्यान*

विश्व-प्रभु का है गीत अद्भुत अग्नि देव का सत्यवचन
अग्निदेव का है उद्गार ये सृष्टि यज्ञ का दैविक है धन॥ (2)
विश्व...
गायक जैसे ला देता है लय को भिन्न-भिन्न स्वरों में
ऐसे ही अग्नि देव भिन्न भिन्न घटकों को जोड़े विशेष अनुपातों में
ऐसे संयुक्त किये इन घटकों से सुसंगत सृष्टि का होता सृजन (2)
विश्व...
जगत है अध्वर जिसके कारण बच रहा जगत विनाश प्रलय से
विश्व के परमाणु मिल रहे आपस में जैसे स्वर और ताल में लय से (2)
भिन्न भिन्न शक्तियाँ डाल गलबाहीं जैसे गा रहीं, तान व सरगम॥ (2)
विश्व...
मौन चट्टानों में गीत भी मूक है, बोले मानो चुप्पी से चुप्पी
पत्थर जब लगते टकराने जाता टूट मौनव्रत खुद ही
चट्टान निर्जीव जगत की प्रतिनिधी फिर भी कराती अग्नि के दर्शन (2)
विश्व...
घास सजीव जगत की प्रतिनिधी सब्जा अग्निदेव है पुरोहित
देह सजीव का हेतु है अग्नि, अग्नि देव आत्मा है वसुवित
विश्व है ऐसा यज्ञ के जिसमें अग्निदेव है पुरोहित श्रेष्ठतम (2)
विश्व...
निर्जीव अन्न करे बलरूप धारण अन्न अङ्ग बन जाता शरीर का
यही अन्न है मन का सहायक ज्ञानोपार्जन करता है जीव का
पुष्ट बना इन्द्रियों का शरीर, बन गया ज्ञान का साधन उत्तम (2)
विश्व...

है प्रताप वैयक्तिक देह में, वही है नित चेतन जीवाग्नि
महा प्रतापी विश्व शरीर का वही तो है परमात्माग्नि
जिस चेतन का गीत विश्व है कहें चेतिष्ठ 'उसे वेद स्वयं॥ (2)
विश्व...

विश्व की नासिकाओं में है आँधियाँ, देह के नथुनो में प्राणगति
कितने देव ब्रह्माण्ड में कार्यरत विश्व शक्तियाँ हैं लीला स्थली
छोटे देह में बड़ा रमणगार चाहें तो खेलें खेल प्रचण्ड॥ (2)
विश्व...

भौतिक बाजा यदि बिगड़ गया तो गायेगा क्या तू मारू राग
यदि है भरोसा प्रभु गायक का ब्रह्मणस्पति का गीत गा आज
श्वास में और प्रश्वास में उसके अमर रागों की है मधु सरगम॥ (2)
विश्व...

आँधियों चलो तुम राग गाओ तुम गाओ देवो गीत हो तमु
प्राणों बोलो स्वर से मधुर, इन्द्रियों नाचो ताल हो तुम
रोम रोम यज्ञिय संगीत में ऐ जान! अग्निमय बन जा प्राणन् (2)
विश्व...

पकड़ चुका हूँ मैं दामन ऐसा, जो है, परम सहायक का
गीत को गायक की स्वर लहरी के सिवाय बोलो चाहिये क्या?
अग्नि देव की है गीत गंगा, इसकी ओट तू कर ले ग्रहण॥ (2)
विश्व...

मेरी जान! तू अमर गायक के 'अधर' गीत का ही तो है अंश
चट्टानों हरियालियों के तो होंठ नहीं हैं पर करे प्रशंस
क्या तुझे बोलते देर लगेगी, बनके ऋचा तू बोल स्वयं॥ (2)
विश्व...

अमर प्रभु का बन जा आलाप ललित राग रागनियाँ बोल
शब्द की अमरता में है आलाप उक्थ ब्रह्मणस्पति के तू बोल
पत्थर, सब्ज़ा, हवा है तो बोल, बोल हे ज्योति वेद वचन॥ (2)
विश्व...

(सब्ज़) हरियाली (वसुवित) बसाने वाला (उद्गार) भावनाओं की अधिकता, भावनात्मक (अनुपात) दो राशियों में सम्बन्ध बताने वाला, भाग (अध्वर) अहिंसक यज्ञ (धन) अति प्रियवस्तु (चेतिष्ठ) चेतनस्वरूप (सब्ज़ा) हरियाली (प्रतिनिधी) प्रतिमूर्ति, प्रतिभा (वसुवित) बसाने वाला (चेतिष्ठ) चेतनायुक्त (प्रशस) प्रशंसा के योग्य (प्रवण) निपुण, उदार (उक्थ) कथन वाक्य (सुसंगत) एकत्रिभाव।

40. विनयी प्रभु

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि॥

ऋ. 7. 6. 1

तर्जः *इन्दननिन्जिल नीगाद*

विनयी प्रभु! हम सबों में नम्रता लाना
प्रातः सायं सन्ध्या करते वन्दन सिखलाना
विभु तेरी विभूति के दर्शन अपने कृत्यों में कराना।
सागरे म ग रे सानी सारे पम सानी साग नी

॥विनयी प्रभु॥

हमने वन्दना विभु की क्या की!
आ गईं सम्मुख विभूतियाँ उसकी
वन्दन-स्त्रोत है प्रभु-कृत्यों में
नम्रता गुण रहे प्रभु-भक्तों में
हम हैं तो हम पर दया है
दोनों पे करता कृपा है

॥विनयी प्रभु॥

फल से लगी शाखा का झुकना
दूध पिलाने में माता का नमना
जल से भरे बादल का लटकना
ऐसे ही प्रभु कृपा का बरसना
प्रार्थना प्रभु की क्या की!
झरझर विभूतियाँ बरसीं

॥विनयी प्रभु॥

होड़ में लगे हैं उपास्य-उपासक
पायेगा बाज़ी में कौन महारथ?
बाज़ी तो मारे प्रभु जी बेशक
फिर भी हैं भक्तो के वो सेवक
विजयी प्रभु हैं विनम्र

करता है भक्तों की कद्र॥

॥विनयी प्रभु॥

प्यासे हैं हम सब प्रभु-प्रार्थना के
सेवा की शक्ति सदा उसके आगे
जी भर के सबको वो देता
ना बदले में कुछ वो लेता
द्वार सदा रखे खोले,
बिन माँगे भरता है झोले॥

॥विनयी प्रभु॥

हृदयों का अजय सम्राट वही है
जिसने दोनों की सेवा की है
सेवा करके ना कभी जताना
ऐसे भाव प्रभु से पाना
पात्र दया का बन के
बाँट दया जन जन पे॥

॥विनयी प्रभु॥

(विभु) शक्तिशाली, विशाल (विभूति) समृद्धि, महिमा, शक्ति।

41. परमेश्वर स्वभूत्योजाः

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानभोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्॥

ऋ. 1. 52. 12

तर्जः *इन्दु परम न्यालम नी इन्दे दले पावी*

परब्रह्म ही है ब्रह्माण्ड का कारण
दे के सृष्टि को जन्म करे उसका पालन
महाबली होकर भी सबका सहारा
सारा ब्रह्माण्ड एक अंश में उतारा
इस जग में नहीं उससे बड़ा फुर्तिला
जो कर सके शासन॥

ईश्वर से हार मानता है मानुष-मन
मानव ना सृष्टि का कर सके पालन (2)
ईश्वर परिपूरण, परिनिरपेक्ष विशेष
है वो सर्वव्यापक, फिर भी है निर्लेप (2)
आकाश जल थल प्रकाश करे धारण
जगत गति कर रहा है उसके ही कारण

॥परब्रह्म ही है॥

नहर खोदे उसकी तारीफ हम करें
पर वर्षा से उसमें जल कौन भरे? (2)
अपने ही ओज में रहता है वो
रचना को देखके उसको जानो (2)
उसकी बुद्धि युक्ति शक्ति अति उत्तम
इसलिये ईश्वर को कहते हैं अनुपम॥

॥परब्रह्म ही है॥

42. बहते ज्ञान रसों में डुबकी लगा लो

सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः

ऋ. 9. 101. 10

तर्जः *इन्दे प्रणयत्ति ताजमहाल*

चलें सन्मार्ग पर हम स्वयं, मिल जाए अनुकम्पा तेरी भगवन्
बह रहा ज्ञानरस प्रवाह, उत्तम श्रेणी की आत्मा की चाह
सत्य शिव सौन्दर्य में ढालो मन

चलें सन्मार्ग...

सन्मुख गन्तव्य मार्ग स्पष्ट करने लगा है
हमने अर्जित किया है ज्ञान रस
लाभ अत्यंत पाया अन्तरात्मा को जगाया
अन्यों को भी सुपथ का सिखाया तप
ये ज्ञान रस सच्चे मित्र हैं
मित्र को मानें मित्र

लोग आने लगे हैं शिष्य भाव से अब
हो रहे हैं हृदय भी उनके प्रसन्न

चलें सन्मार्ग...

आओ ज्ञानरसों को आत्मा का अङ्ग बना लें
लेन देन के भाव जगाएँ
निज ज्ञान प्रवाह अन्यों में बहाएँ
यज्ञ भाव सदा मन को सुहाये
आये राजा चोर बन्धु ज्ञान को छीन न पाए
व्यय करने पे और बढ़ जाता ज्ञान-धन
ये हटाता है अज्ञान का आवरण॥

चलें सन्मार्ग...

विद्या मानव को देता है उज्जवल स्वरूप
है जो गुप्त ये धन है प्रच्छन्न
भोग सम्पत्ति का भी कराती है विद्या
वो ही कराती है यश सुख उत्पन्न
गुरुओं की गुरु है वो देवी
भरती है जीवन में रंग
विद्याविहीन मनुष्य है पशु के सम
मार्ग उसका कण्टक भरा है अगम

चलें सन्मार्ग...

ज्ञान रस तो होता ना अज्ञान से मिश्रित,
इसलिए रस है निर्दोष निर्मल
भ्रान्ति सन्देह से है वो रहित है,
इसका शुभ चिन्तन करता मङ्गल
अनुप्राणित करे शुभ भावना,
रहे अन्तः प्रकाश भरा
स्वर्विद है ये ज्ञानरस सर्वथा,
अतिशय मार्ग दर्शक है ज्ञान-रसन॥

(अनुकम्पा) कृपा (प्रच्छन्न) आच्छादित (अगम) ना जानने योग्य, दुर्गम (स्वर्विद) अन्तः प्रकाश पाने वाले

43. इन्द्र तेरे शरीर में अनेक कर्म है

अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळहं सहस्तन्वि श्रुतो दधे।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः॥

ऋ. 1. 55. 8

तर्जः *इन्द्रनील मयोनम*

इन्द्ररूप आत्मन् कर ले तू प्रगमन
शक्ति है अखूट तुझमें कर्म असाधारण
दैवरूप इन्द्रियाँ हैं ज्योति सही पथ पर,
कर इनका चलन॥ ॥इन्द्ररूप॥
कहते हैं तेरा हाथ है भगवान् (2)
इसलिये रहता है तू ऐश्वर्यवान (2)
देह की इष्ट ज्योति, इन्द्रियाँ हैं उपदान
कार्यकर्ता देह के कितने हैं महान (2) ॥शक्ति है॥

तेरे शरीर में शौर्य प्रबल है (2)
सत्य से संविदित सचन सकल है
कोष अमोलक लिये ये कर्ता
रात दिवस कर रहे हैं रक्षण (2) ॥शक्ति है॥

नेत्र हैं दर्शनीय कर्ण है श्रवणीय (2)
श्वास हेतु मिले नासिका-छिद्र-विय (2)
क्षण क्षण का स्पर्श दे रही ऋतुऐं
रसना रस की मीमांसा मनोरम (2) ॥शक्ति है॥

प्राण निरन्तर चलते हर क्षण (2)
ये तो दृंहण है और हैं दृश्वन (2)
सात ऋषि ये प्रमाद रहित हैं
रक्षक बन करते घर सम्पन्न (2) ॥शक्ति है॥

दुरुपचार ना कर तू शरीर से (2)
हे इन्द्र! सम्भाल रख शील से (2)
अनेक प्रयोजन इसमें सिद्ध कर
मोक्ष का द्वार है मानव-तन (2) ॥शक्ति है॥

(प्रगमन) उन्नति (वियु) जोड़ा (अखूट) अमिट, पूर्णतः (उपदान) भेंट, नज़राना (दुरूपचार) अयोग्य उपचार (शौर्य) बल, पराक्रम (संविदित) भली प्रकार जाना हुआ (सचन) सेवा करने की क्रिया का भाव (मीमांसा) विचारपूर्वक तत्व निर्माण (दृंहण) दृढ़ता का भाव (दृश्वन) देखनेवाला, दर्शक

44. सदा पुरुषार्थी रहें

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

यजु. 40 / 2

तर्जः *इर कूट लै इन कुईल क ऽ ऽ ऽ*

पुरुषार्थ कर्म ही सुखों का मूल है
ये परखी बात है
करते कर्तव्य कर्म और निभाते धर्म
वही जीव स्नात है
कर्म हे जीवन-गति कर्म है रक्षक शक्ति
और सत्य पाथ है पुरुषार्थ...

चारों वेदों का ये मूल मन्त्र है
जीवन की शुभ चाल का यन्त्र है (2)
उच्चता जाग्रति का रहता नित प्रभाव
छूट जाते आलस्य हीनता के भाव
जहाँ पुरुषार्थ वहाँ श्री का सदा वास
अनासक्ति के भाव में ही है प्रकाश
हों कर्म निस्वार्थ करते रहें परमार्थ
पुरुषार्थ कर्म साथ साथ हैं पुरुषार्थ...

कर्म करते करते जीयें सौ वर्ष
जीते जी पायें जीवन में उत्कर्ष
फिर कर्म-बन्धन से जाना है छूट
क्यों ना प्रभु से मिलें अमृत के घूँट?
बोलो निष्काम कर्म है के ना सूच?
आध्यात्म यज्ञ में रहना है आहूत
ये निष्काम कर्म, शान्ति स्थिरता के गढ़
पुरुषार्थ में सफलता साथ है।

पुरुषार्थ...

(उत्कर्ष) उन्नति, ख्याति (सूच) पवित्र (आहूत) न्योछावर, समर्पित

45. उषा का आवाहन

यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृतां ईरयन्ती
सुमङ्गलीर्विभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ॥

ऋ. 1. 113. 12

तर्जः *उच्ची मुत्तम कारूम गाति*

तुम अन्धकार का करती हुई विवासन
करो प्रकाशित, चहुँ ओर, विस्तृत गगन॥
करें प्रार्थना हम, चमको तुम
हे उषा! करो हमें सम्पन्न ॥तुम अन्धकार॥

विच्छिन्न करती हो अन्धकार, वैसे विच्छिन्न करो द्वेषों को
प्रकृति से तुम सत्य नियमों के रक्षण का भार लिये हो
इक दिन की अनुपस्थिति में टूटे सारी श्रृंखला
प्रतिदिन सत्य व्यवहारों की रक्षक बन जा हे उषा!
सत्य के इस वातावरण में तुम जन्मी हो ऋतेजा! ॥तुम अन्धकार का॥

सत्य व्यवहार फले फूले ऐसा बना दो वातावरण
ताके सत्यजेता कहलाये, सन्तति हों सब स्वर्ण-सम
उषा तुम सुम्नावरी हो सुखमयी सृष्टि कारक हो
सत्यात्मिका मृदुप्रिय वाणी हो दिव्य ज्योति-धारक हो
हे मङ्गलमय प्रिय उषा दो हमको सुमेधा॥ ॥तुम अन्धकार का॥

उदित सौम्य स्वर्णिम प्रभात, होवे सर्वतः सुखकारक
परम ज्योतिप्रद महायज्ञ बरसे मङ्गलमय ज्योति सरस
प्रभु-पूजन व अग्नि होत्र अतिथी सत्कार की हो प्रेरक
श्रेष्ठतया हो तुम पूषे! सर्वप्रेरणा की हो पूरक
हे उषे! नभ पृथिवी पर चमको सुषमा हे सुहला! ॥तुम अन्धकार॥

(विवासन) देश निकाला (विच्छिन्न) अलग, विभक्त (श्रृंखला) कड़ी (सत्यजेता) सत्य पर विजय पाने वाला (संतति) सन्तान (पूषा) पोषण कर्ता (सुषमा) परमशोभा या कान्ति (सुहला) सुखदायक सुन्दर (सर्वत) सब ओर से (सुम्नावरी) सुखमयी (ऋतेजा) सत्य नियमों का पालन करने वाली (सत्यात्मिका) सत्य की आत्मा (सुमेधा) तीक्ष्ण बुद्धि, मेधावी बुद्धि।

46. हे शक्तिमय!

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः॥

ऋ. 10. 22. 13

तर्जः ***उट्टुवैत उरू वट्टनिला उलीपुन्नग***

प्रार्थना अपने प्रभु से अभीष्ट की हम कर रहे
हो सदा हिंसा रहित, कल्याण के पथ पर चलें॥
ना हो अनिष्ट इसमें निहित हो हित सत्य से पूरित॥
अन्तःकरण से ये निकली हैं निर्मल
प्रभु तेरे हृदय तक पहुँचे ये हर पल
प्रार्थनाओं को सुन, सत्य करो भगवन्
हैं ये प्रतिपन्न, प्रेरणाओं से प्रपन्न
धेनु-स्वामी सम, अभीष्टों से पूर रहे॥ ॥प्रार्थना॥

प्रार्थना रूप कर्मों को ही करें
तदनुसार ही उसे भोगा करें
हे वज्रवाले शक्तिमय प्यारे दाता
हिंसा रहित प्रार्थनाओं के ज्ञाता
हृदय स्पर्शी प्रार्थनाएँ कैसे निष्फल रह सकें ॥प्रार्थना

(अभीष्ट) मनोनीत इच्छा (अनिष्ट) अहित, अपकार (पूरित) पूर्ण (प्रतिपन्न) परिपूर्ण (प्रपन्न) प्राप्त (धेनु) गाय (पूर) पूर्ण।

47. प्रभो! दुरित मार्ग से बचाओ

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम्॥

ऋ. 5. 9. 6

तर्जः ***उन आँखों में नींद कहाँ***

हे रक्षक स्तुतिमय परमेश्वर
आनन्दरत हों मन के भीतर॥
तेरा प्रकाश आनन्द जगाये दोष दूर कर सबल बनायें (2)
प्रेम की शक्ति दो जगदीश्वर आनन्दरत हों मन के भीतर॥

साथ न पापी-सत्कर्मी का पायें फल सब निज करनी का (2)
सदा दूर रहें दुरित से ईश्वर आनन्दरत हों मन के भीतर॥

निन्दा द्वेष से प्रभु बचा दे सात्विक प्रेम की राह बता दे (2)
दुर्गुण दोष रहित हमको कर आनन्दरत हों मन के भीतर॥

अप्रशस्त मनभाव भगायें जीव मात्र में प्रेम बहायें (2)
जगें प्रेममय मन के ही स्वर आनन्दरत हों मन के भीतर॥

(दुरित) दुर्गुण, दोष (अप्रशस्त) निंदनीय, बुरा

48. तुझे किसी भी दाम पे न त्यागूं

महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्कायं देयाम।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ॥

ऋ. 8. 1. 5

तर्जः ***उन आँखों में नींद कहाँ***

एक तरफ तो परमेश्वर है दूजी ओर ये जग के भोग
नैनों से ना दीखे ईश्वर पर संसार तो दीखे रोज़॥
कभी ना त्यागे जीव प्रत्यक्ष को और परोक्ष को करे परोक्ष
कैसी विचित्र दशा है जीव की परोक्ष का ना जरा भी बोध ॥एक तरफ॥

आयु पुत्र धन धान्य माँग ले भूमि सुवर्ण या रत्न माँग ले
निस्संदेह तू पा लेगा पर मृत्यु के बाद की फिर ना सोच ॥एत तरफ॥

चाहे प्रकट हो चाहे गुप्त हो सब पदार्थ सुखदायक प्रभु में
दाता कोई ना बढ़कर प्रभु सा दान ज्ञान के बहते स्तोत्र ॥एक तरफ॥

भौतिक धन ऐश्वर्य हैं नश्वर पा ले तू निज परमेश्वर को
मिला जो परमेश्वर तो उसका सात्विक धन आए उपयोग ॥एक तरफ॥

निराकरण जो ब्रह्म का कर दे निराकरण उसका हो जाए
ईश्वर के बदले में भी ये कुबेरधन ना दे संतोष ॥एक तरफ॥

अनन्त धनवाले को चाहे या तू चाहे भौतिक धन
निहित है किस में कितना मंगल स्थिर मन और बुद्धि से सोच
॥एक तरफ॥

हैं अनित्य संसार के बन्धन और नित्य ईश्वर दुःख-भाजन (2)
क्यूँ ना करें प्रभु का अवलम्बन ध्यान लगा ईश्वर की ओर ॥एक तरफ॥

नित्य के बदले अनित्य लेकर ना कर घाटे का तू सौदा
इस असार संसार के बदले ना अपने प्रीतम को छोड़ ॥एक तरफ॥

(प्रत्यक्ष) आँखों के सामने, दृष्य (स्तोत्र) स्तव, स्तुति, स्तुतिगीत (परोक्ष) आँखों से परे, अदृष्य (निराकरण) खण्डन, अपहस्तना (निहित) स्थापित, धरा, सौंपा, छिपा

49. बाधक शत्रु मार्ग से दूर हों

अप॒ त्यं प॑रिप॒न्थिनं॑ मुषी॒वाणं॑ हुर॒श्चित॑म्। दू॒रमधि स्रु॒तेर॑ज॥

ऋ. 1. 42. 3

तर्जः *उन कलिया मुदल मडया*

धर्म के मार्ग पे चलना तो
इतना आसान काम नहीं
इसलिये प्रेरणा वेदों से ले लो
कितने छद्मवेषी-शत्रु मार्ग रोके
दृढ़ प्रतिज्ञ होके लोहा ले लो॥

वेदशास्त्र से प्रेरणा लेके
शत्रु-दलों से लोहा ले लो
धर्म के पथ चलने का व्रत लो
धर्म पथिक तुम वीर हो लो ॥धर्म के मार्ग॥

धर्म के पथ चलने का व्रत
यात्रा से पहले लेते हैं
तभी अधर्मी दुष्कृत-कर्मी
अपना षड्यन्त्र रचते हैं
मिलते धर्म मार्ग में विघ्न
धर्म पथिकों को करते खिन्न
धर्म-वीरों इनसे ना डरो॥ ॥धर्म के मार्ग॥

वेद शास्त्र से प्रेरणा लेके
शत्रु दलों से लोहा ले लो
धर्म के पथ चलने का व्रत लो
धर्म-पथिक तुम वीर हो लो॥

सत्य अहिंसा अस्तेय ब्रह्मचर्य
धर्म पथिक पाथेय ले चलते
बीच में चोर मुषीवा लोग भी
लुभावने रूपों से ठगते
धर्म पथिक को कुटिलता से

पथ से भ्रम भरित करते
सावधान उनसे रहो॥ ॥धर्म के मार्ग॥

वेद शास्त्र से प्रेरणा लेके
शत्रु दलों से लोहा ले लो
धर्म के पथ चलने का व्रत लो
धर्म पथिक तुम वीर हो लो॥

ना केवल ये बाह्य शत्रु
अंतस् शत्रु भी आते हैं
छुपकर वो अन्दर बैठे ही
धार्मिक भाव दबाते हैं
मन को कुटिल बनाते हैं
धर्म यात्रा दुरीक्ष होती
वृत्रों से परे रहो॥ ॥धर्म के मार्ग॥

वेदशास्त्र से प्रेरणा लेके
शत्रुदलों से लोहा ले लो
धर्म के पथ चलने का व्रत लो
धर्म-पथिक तुम वीर हो लो॥

हे पूषन्! परमात्मन्
इस आत्मा की रक्षा कर दो
धर्म मार्ग के मिथ्याचारी
उनसे दूर हमें कर दो
केवल तुम आत्मा के प्रेरक
पालक पोषक हो रक्षक
धार्मिक यात्रा सफल करो॥ ॥धर्म के मार्ग॥

वेदशास्त्र से प्रेरणा लेके
शत्रु दलों से लोहा ले लो
धर्म के पथ चलने का व्रत लो
धर्म पथिक तुम वीर हो लो॥ ॥धर्म के मार्ग॥

(छद्मवेषी) कपट के भेष में (मुषीवा) चोर (दुरीक्ष) बुरे विचार की (वृत्र) अन्धकार।

50. हे प्रभु! हम तुम्हारे प्रति समर्पित हैं

इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः॥

ऋ. 6. 44. 10

तर्जः ***उन्नोडू बालाद वाल्बेन वार्डिन्गा***

हे परमात्मन्! हे 'इन्द्र'! स्वामी, ये धन आपका ऋद्ध है
हे शुभ्र उज्जवल और सत्य साधित, ये पूर्णरूप से प्रवृद्ध है
कर रहा है सृष्टि का मंगल, सबका दानशील बन्धु है
सत्य से है अन्वित असत्य से विलेप
मघ प्रतिपादक और ज्योतिकीर्ण सारे जग के॥
॥हे परमात्मन्॥

कोई विरला ही कह दे निश्चय से, वो पूर्ण या पवित्र है?
क्या उसके भी ये अर्जित धनबल प्रज्ञान से प्रदीप्त है?
असत्य व्यवहारो में छल-छिद्र से, बन जाता अधोगामी अनृत से,

करता वेदवाणी अनसुनी,
ना पाये प्रभु से अमी
क्षुद्रभाव से वो होके अनाश्रित
पाप में प्रवृत्त है॥
॥हे! परमात्मन्॥

किरणों वाले हो, हो हरिवान तुम, दो दिव्य ज्योतिकिरण,
चहुँ दिशी जैसे सूर्य की किरणें,करें सबका आभरण,
हे ऋक् साम रूप हरियों वाले
ऋचा स्तोत्र सामगीत वाहन वाले
करें विश्वयात्रा इनसे
पास सबके जा पहुँचें
तो शरणागत को, तुम अपना लो
बनके मधवन्-सुमित्र॥
॥हे! परमात्मन्॥

तेरे जैसा बेली बन्धु, जग में कोई नहीं
ऐसा हार्दिक धर्मोद्धारक तुझसा होता नहीं
संकट भय से हमको बचाओ
हृदयों में तुम घर कर जाओ
सारी जगती है स्वार्थवशी
केवल निःस्वार्थ तू ही
ऋत सत्य सिद्धि के हेतु दे दो बुद्धि
फिर कहाँ अविद्य है॥

॥हे परमात्मन॥

(ऋद्ध) समृद्ध धनी (ज्योतिकीर्ण) ज्योति फैलाना (प्रवृद्ध) उन्नत, बढ़ा हुआ (आभरण) पालन पोषण (अन्वित) मिला हुआ (विलेप) पोता हुआ (मघ प्रतिपादक) धन बल उत्पन्न करने वाला (अविद्य) मूर्ख (बेली) संगी-साथी (अमी) अमृत।

51. सहनशक्ति भी महती महिमा

अ॒हम॑स्मि॒ सह॑मान॒ उत्त॑रो॒ नाम॒ भूम्या॑म्।
अभीषाड॑स्मि विश्वा॒षाडाशा॑माशां विषास॒हिः॥

अथर्व. 12. 1. 54

तर्ज : *उरगदे मरगदे उरे पार्वयाले*

वियमदे विमद दे साहस भी अदम्य दे
विनय ये विनत है प्रभु अपना सख्य दे
सबको हरा दूँ, सह सहकर
मानव योनि में अब रहकर
मनुष्यत्व का मुझे सदा स्वाभिमान है
भूमि माता की तरह सहना मेरा काम है

वियम दे...

जो कोई आएगा मेरे मुकाबले में
वशीभूत कर लूँगा सहन शक्ति से
रह सकता ना खड़ा कोई प्रतिद्वन्द्वी
उत्तर हुआ हूँ, संयम युक्ति से
पुत्र भूमि माता का हूँ, अभीषाड् हूँ

हो ऽ ऽ ऽ जिस दिशा में पैर रखूँगा होऊँगा सफल
झुका लूँगा अपने सामने कष्ट दुःख सकल

वियम दे...

उज्जवल करने भूमिमाता का मुख
कठिनाईयों से ना होना है कभी विमुख
हरपल इक जैसे रहते ना सदा ही
संयम के अमोध अस्त्र काट देंगे दुःख
संग मेरे हृदय वासी प्रभु सदा से
वियम में विरत कर देंगे विशद विधा से
हो ऽ ऽ ऽ प्रभु तुम से संयम शक्ति तो अद्‌भुत मिली रे
तेरी ही शरण में हृदय-कली तो खिली रे॥

(वियम) संयम (विमद) मद रहित (अदम्य) प्रबल, अजेय (विनत) विनम्र (प्रतिद्वन्द्वी) बराबरी का लड़ने वाला (पुष्टि) कारण, ढंग, उपाय (अभीषाड) मुकाबले में आये हुए को सहने वाला (अमोध) सफल (विश्वषाड्) मुकाबले में आये हुए विश्व (विद्या) विधी को सहने वाला (विरत) अति लीन (विशद) स्वच्छ, स्पष्ट।

52. सबको पवित्र करने वाले अग्नि देव

बृहेद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥

साम. 37. ऋ. 8. 48. 2

तर्जः ***उरमयक पक्षी पारम्भू चिरमूलम ततमेलम्मू***

हे प्रभुदेव! पावक तू
पथप्रदर्शक है 'अग्नि' तू
अनुकरण तेरा करते जाएँ
तू ज्ञान-ज्योति को दे ताजा
जिससे होवें हम पावन

॥हे प्रभु देव!॥

पथ प्रदर्शन तू करना
नेता हम सब का बनना
हे सुदेव! हे सुदेव!

हे सुदेव ज्ञान तू ऐसा भरना
जिससे हम बन जाएँ देव॥

॥हे प्रभु देव॥

साधक योगी और तपस्वी या सुधी ज्ञानी जन
उनके गुण कर्म और स्वभाव का कारण तू भगवन्
ऐसे पावक अग्निदेव, ज्ञानप्रकाश के विधि-विधेय
स्त्रोत ये बहता अपरिमेय
विनय प्रार्थना सुनो
मन बुद्धि आत्मा को
प्रभु उज्जवल कर दो

॥हे प्रभुदेव॥

पथ प्रदर्शन तू करना
नेता हम सबका बनना
हे सुदेव! हे सुदेव!
हे सुदेव ज्ञान तू ऐसा भरना
जिससे हम बन जाएँ देव

॥हे प्रभुदेव!॥

ज्ञान ज्योति से भासित प्रभु जी, सम्यक रूप प्रकाशित
सर्वरूप में हो तुम सक्षम, सर्वजगत पालित
हे युवतम पावन भरद्वाजे! बल शक्ति सबमें भर जाते
ज्ञान बल प्राप्त कराते, हो ऽ ऽ ऽ
लक्ष्य पूर्ण कर दो
दिव्यानन्द भर दो
जीवन धन्य कर दो॥

॥हे प्रभुदेव॥

पथ प्रदर्शन तू करना
नेता हम सबका बनना
हे सुदेव! हे सुदेव
हे सुदेव ज्ञान तू भरना
जिससे हम बन जाएँ देव!

(विधी) व्यवस्था (विधेय) जिसका विधान होने वाला हो (अपरिमेय) असंख्य।

53. दिव्य आचमन

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥

साम 33. ऋ. 10. 9. 4

तर्जः ***उरि चिरकन्डाय कणी कन्डाय मधुमदी***

अब धन अनभाये, यश अनभाये, नश्वरी
प्रभु ऐसा वर दो, हो कल्याण, अनुग्रही
जिससे मन शान्ति पाये, सन्तोष अधिक उपजाये
जो साधुता से जुड़ जाये, सद्भावना सदा सरसाये
ऊँचे विचारों की लहरियों में बहते ही जायें
॥अब धन॥

अच्छा लगे यश पर असर क्षणिक होय
अपयश बुरा लगे, पर समय बदलते खोय
धन को भी देख लिया निर्धनता रोना रोय
आदर-अनादर में भ्रान्ति ही होय
धन-निर्धनता यश-अपयश में व्याकुल रहें हम
अधिक धनी को देख के ईर्ष्या से ही जले मन
दुष्टता ना छोड़ें दुर्जन, किन्तु हम हैं अनुभवी॥
॥अब धन॥

स्थिर रूप से हृदय में करो प्रवाहित सद्भाव
भरा रहे शुभकामओं से हृदय-उद्भाव
सत्य-इच्छाओं के सागर में हो कल्याण की नाव
सुख-शान्ति-आरोग्य का फैला देवेंगे प्रवाह
तुझसे लेवें जगन्नाथ! अभयता और आरोग्य
पूर्णानन्द की चारों ओर से वर्षा कर दो हे गुणोध॥
शिवसंकल्पों की धारा में करें आचमन अध्वरी
॥अब धन॥

(अनभाया) अच्छा ना लगा हुआ (अनुग्रही) कृपा से प्राप्त (साधुता) सज्जनता (सरसाना) वायु के वेग से बहना, तर कर देना (उद्भाव) चित्त की उदारता (अध्वरी) यज्ञ रूप, अहिंसक यज्ञ (नश्वरी) नष्ट होने वाला।

54. यज्ञ और उत्सवों में भगवान् का भजन

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्र आनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु॥

ऋ. 1. 102. 1

तर्जः *उर्मिला मी निरोप तुज देता*

ज्ञान का प्रभु दाता (2)
स्तुति विद्या का भक्त ज्ञान ले
प्रभु कृपा पाता ॥ज्ञान का॥

स्तुति प्रार्थना उपासना का शुभ उपदेश तो प्रभु ही करता
इस विद्या का ज्ञान ले साधक घर घर फैलाता॥ ॥ज्ञान का॥

भगवद्भक्ति घर बैठे ही ज्ञानी गुरु सिखलाये मन से
भाग्यवान उससे बढ़कर के कौन कहलाता? ॥ज्ञान का॥

यज्ञ उत्सवों में ईश्वर का यशोगान ही मस्ती लाये
निर्मित जग कृति परमेश्वर की भक्त समझ पाता ॥ज्ञान का॥

जीवन के उल्लास में प्रभु की अनुकम्पा तो नज़र ही आये
दृष्टिपूत वह इन्द्र सभी का अनुमत बन जाता॥ ॥ज्ञान का॥

दुर्बल पर जब संकट आता व्यथित हृदय व्याकुल हो जाए
तभी देव बन दुःखियों के सब संकट हर जाता॥ ॥ज्ञान का॥

प्रभु के चित्र्य उपदेशों को सरल हृदय से सेवित कर ले
सब कर्मों के आदि में, तू ही लक्ष्य रहे दाता॥ ॥ज्ञान का॥

उसके दिये उत्कर्ष हर्ष में, धन्यवाद हम करें हृदय से
कृपा पात्र बन सुमति पायें वो है परिजाता॥ ॥ज्ञन का॥

(सेवित) व्यवहार में लाया (अनुकम्पा) कृपा, मेहरबानी (दृष्टिपूत) जिसको देखने से आँखें पवित्र हो जाये (चित्र्य) संचित करने लायक (उत्कर्ष) समृद्धि, उन्नति (अनुमत) प्रशंसित, प्रशंसा के लायक (परिजाता) ज्ञानी, बुद्धिमान।

55. मित्र शत्रु बन जाते हैं

सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः॥

ऋ. 5. 12. 5

तर्जः *उरुक चिरतवडे ये कुरुमत*

मित्र से मित्र तरे वो ही कल्याण करे
जो दुःख से तारे उसको मित्र कहें
और विषम दशा से सदा बचाया करें॥

मित्र की मर्यादाऐं मित्र ना भङ्ग करें
दुःख हों या विपदायें हों उन सबका वो नाश करें
और धैर्य दिलाया करें, अशिव को शिव करें
मन वचन कर्म सन्मित्र के शुद्ध, बुद्ध, पूत, शुक्र, पूज्य रहे॥
॥मित्र से मित्र॥

मगर जो नित्य प्रति देखे शुभ हो जाते अशुभ कैसे?
पापरूप कटु वचनों से वाणी अपनी हिंसित करते
पहले तो मीठी बातें करते हैं, मित्र गरज के
प्राण देने को उद्यत अब बने प्राण के प्यासे
पहले तो प्रेम करें फिर मन में द्वेष भरें
तोड़े विश्वास करें विनाश, और दर्व दर्प घर्ष पर्ष भाव भरें॥
॥मित्र से मित्र॥

जब कभी टूट गया विश्वास मान के मुख पे लगा कराट
देता अपनी बातों को मोड़ और देता वचनों को छोड़
पक्ष अब उलट गया मित्र भी शत्रु बना
मान बनकर अपमान बनता दुःखदायी परिणाम
कर सका ना पर-कल्याण खुद का भी हुआ अवमान
ना प्रीत पली, अश्रु-ढली अर्ह मन्म द्युम्न सुम्न व्यर्थ गये॥
॥मित्र से मित्र॥

मित्र तो मैत्री-वचन में रहे, ना तो वो हिंसा कभी करे,
मान-मर्यदा परहित का मित्र को ध्यान सदा रहे
मित्र तो सच्चा-शिव, प्रेम जिसमें है अतीव
विषमता आये तो भी अपकृत अनहित ना करें
करता वो स्वस्त्ययन बोले वो शुद्ध वचन
इक मन इक चित्त, मन्द्र स्वभाव और धर्म कर्म वर्ष तर्क शुद्धरहे॥
॥मित्र से मित्र॥

(शुक्र) चमचमाता (पूत) पवित्र (विषम) कठिन, पीड़ाकारक (दर्व) फिसादी, हानीकारक (दर्प) अहंकार (घर्ष) आक्रामिक, अनुचित बर्ताव (पर्ष) कठोर हृदय वाला (कराट) थप्पड़ (अवमान) अनादर, तिरस्कार (अर्ह) पूजा (द्युम्न) आभा कान्ति (सुम्न) दया, कृपा, प्रसाद (अपकृत) हानि (स्वस्त्ययन) कल्याण (मन्द्र) सुखद, मोहक (तर्ष) इच्छा (तर्क) अटकल (मन्द्र) विचार (वर्ष) मेघ, बादल।

56. शुचियज्ञ में शुचि छवि

शुची॑ वो ह॒व्या म॑रुतः॒ शुची॑नां॒ शुचि॑ हिनोम्यध्व॒रं शु॒चिभ्यः।
ऋ॒तेन॑ स॒त्यमृ॒तसाप॑ आय॒ञ्छुचि॑जन्मानः॒ शुच॑यः पाव॒काः॥

ऋ. 7. 56. 12

तर्जः *उरुवेड़ निन्ने न्यान मुन्ने कन्डिरूम*

उरुवेन्य निजून्याव तुमने यदि किया धारण, तो तुम,
ऋतसाप होने के कारण पावक रहोगे
अपने व्यवहार में बनके सुदेव सत्य को करके हृदयंगम, 'सुमना'
निजकर्मों से अन्यों को भी शुद्ध करोगे॥ उरुवेन्य...

ईश्वर की वाणी को सुन लो ऐ मानवो (2)
निश्चित पवित्रात्मा ही हो तुम, आ ऽ ऽ ऽ (2)
इसलिये अध्वर के प्रेरक हैं ईश्वर (2)
बस केवल हवियों में होवें सद्गुण (2) उरु वेन्य...

नीर समान ही नीरंग हैं आत्मा
पात्राबुसार करता नीर गुण ग्रहण (2)
वैसे ही गुण-दोष में ढलता आत्मा
कर्मों से बनता मलिन या पावन (2) उरुवेन्या...

यज्ञों को ही कहा जाता अध्वर (2)
अर्थ है यौगिक जो हिंसा रहित, आ ऽ ऽ (2)
लोक कल्याणार्थ के हैं ये क्रत कर्म (2)
पड़ती हैं हितू-छबियाँ इनमें प्रमित (2) उरुवेन्य...

यज्ञ हों दैनिक या श्रोत यज्ञ हों (2)
हर पल के मूल में है शुचिता (2)
लोक-कल्याणार्थ आओ करें यज्ञ (2)
जनजन में जिसकी बढ़ जाए प्रभा (2)

(उरुवेन्य) मूल्यवान सुन्दर (निजून्याव) खुद के नियम नीति, आचरण, पद्धति (ऋतसाप) सत्य प्रतिज्ञ लोग (श्रोत यज्ञ) अश्वमेघादि यज्ञ (अध्वर) हिंसा रहित यज्ञ (नीरंग) बिनारंग का, निर्मल (प्रमित) निश्चित (सुमना) अच्छे मनवाला (प्रभा) दीप्ति, प्रकाश, चमक।

57. इस हैं? उस

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः। विश्वा वसूनि बिभ्रतम्॥
साम. 589 ऋ. 9. 108. 11

तर्जः *उरु वेनल पुडयिल पैडनीरिल उलगी तिलम्मी*

स्तुति का दिव्य संगीत यहाँ, रोम रोम में उमड़ पड़ा
विश्व रचयिता की महिमा के गीत मनोहर गा रहा
गगन में पाताल में चारों ओर से गूँज उठा
गीत अनोखा हर्ष भरा बाह्य-अन्तः का भेद मिटा॥
॥स्तुति का॥

दिग्दिगंत स्वर में गुञ्जित है, देता रहा सुनाईं
बन गया यहाँ यह वह गीत मस्ती का नशाई
ऐसा नशा छाया मिट गये भेद, हो गये यह वह एक रंग
मस्ती में झूम रहा है पत्ता-बूटा हवा के संग
॥स्तुति॥

अणु अणु सतत काटें चक्कर रास का छाया है नर्तन
चारों ओर से ग्रह उपग्रह करते रवि का भ्रमण
संस्थान में ढ़ल गया अणु अणु खेलें नाचें कण अवकण
जल-तरंग पे नाचें किरणें, झूमे पवन की मस्त तरंग
॥स्तुति॥

लिपट लिपट तरुवल्लरियाँ और डालों में है उमंग
हरित रंग से हर्षई ये वसुधा स्वयं
गीतों की मस्ती का राग रसीला रचता जा रहा सुर सरगम
बरस रहा है निर्झर ये रिमझिम करता सावन
॥स्तुति॥

निज विश्व-धेनू को दोह लिया है,बछड़े हैं जिसके स्तुतिस्तोम
दूध किरणों सा उमड़ घुमड़ कर बना मन्द्र सोम
मन इन्द्रिय आत्मा बन गई ज्योति, सुन सुन गीतों का गायन
किरणों की लहरियाँ भी झूम झूम गाये स्वर-धुन
॥स्तृति॥

इस विश्व की कई विभूतियों में, इक सान्द्र-गान है
ऐश्वर्य धन रसों का ये सुखद दान है
मेरे गीत बनें हैं विश्व की बस्ती, करते जा रहे परिपोषण
गीत बिना संसार का जीवन, लेकर आता सूखापन
॥स्तुति॥

आओ मेरे इन्द्र के देवों कर लो स्तोम का सवन
यही सोम है, यज्ञ यही है सर्व रसों से प्रवण
मैं सींच लूँ इनको चारों ओर से, वसुघन है अनमिट अनमोल
विश्व की बस्ती बसा लूँ गाकर गीतों का गायन
॥स्तुति॥

(दिगदिगन्त) दसों दिशाओं से क्षितिज तक (नशाई) नशे से भरा (तरुवल्लरि) बेल, लतायें (मन्द्र) मनोहर (परिपोषण) पालन-पोषण (वसुधन) सबको बसाने वाली सम्पत्ति (संस्थान) ढाँचा (हृषि) आनन्द (सोम) अमृत, सोम यज्ञ (सोम सवन) शुद्धि परक स्नान (विश्व-धेनू) संसार रूपी गाय, विश्व पालन कर्ता (सान्द्र) सुन्दर, स्निग्ध (प्रवण) उदार।

58. आत्मयुक्त आकाश के दोहन से अमृत पैदा होता है

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः॥

ऋ. 9. 74. 4

तर्जः *एक नाम वाचे सदा जपे श्री रामासी*

एक ओइम् नाम जपे मन निशिदिन
सम्प्रसाद पाये आत्मा, मिले ब्रह्मज्ञान अभिन्न
॥एक ओ३म्॥

है हृदय आकाश विस्तृत, बैठा आत्मा ज्योतिर्मय
प्रभु का है मन्दिर जिसमें सकल जगत शोभित अनुपम
॥एक ओ३म्॥

हृदयाकाश में विराजें महापुरुष ब्रह्मरूप
मनोमय पुरुष ये आत्मा करे ब्रह्मामृत दोहन
एक ओ३म्॥

हृदयाकाश खोज ले, आत्मा अमर, तू अक्षय
ज्ञान से हो जा समृद्ध, ऋत सत्य तप ही जीवन
॥एक ओ३म्॥

सत् पुरुष जो उत्तम ज्ञानी करे ज्ञान से प्रसन्न
वृष्टि ज्ञानामृत बरसाये, करे परहित चिन्तन
॥एक ओ३म्॥

(सम्प्रसाद) जीवात्मा इस शरीर से निकलकर परम ज्योति को प्राप्त होकर अपने स्वरूप में निष्पन्न होता है यही अमृत है! यही अभय है। यही ब्रह्म है।

59. सरस्वती में गिरने वाली पाँच नदियाँ

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥

यजु. 34 / 11

तर्जः *एक माझे गाँव होते*

पाँच नदियाँ बहते बहते जा मिलीं जहाँ है सरस्वती
फिर सरस्वती पञ्च धाराओं में आगे जा बँटी॥ ॥पाँच नदियाँ॥

यह सरस्वती वाग-धारा
है विलक्षण जिसके दर्शन
चक्षु-रसना श्रोत—नासिका
त्वचा—धाराएँ जो मिलीं॥ ॥पाँच नदियाँ॥

ज्ञान धाराएँ पाँचों
मन समान ही स्त्रोत वाली
मन के माध्यम के बिना
ना ये प्रवाहित हो सकीं ॥पाँच नदियाँ॥

इसलिये सब ज्ञान धाराओं
का उद्गम है ये मन
संगृहित क्रतु-ज्ञान का
ये स्वयं कभी ना कर सकीं॥ ॥पाँच नदियाँ॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रियों की धाराओं
का संगम है वाणी
रूप रस गन्ध श्रवण स्पर्श का
करती है वर्णन वाणी॥ ॥पाँच नदियाँ॥

आओ हम इस वागरूपिणी
सरस्वती सरिता में अपनी
विविध ज्ञान धारायें मिलाके
वाणी को बनाएँ शुभार्थी॥ ॥पाँच नदियाँ॥

(वागधारा) वाणी रूपी धारा (विलक्षण) अद्भुत, विचित्र (उद्गम) आरम्भिक स्थान (क्रतु) कार्य, कर्म (शुभार्थी) शुभ कर्मों में प्रेरित (सरस्वती) ज्ञान की देवी।

60. परमात्मा जीव को गुहा में मिलता है।

पूषा राजानमाघृणिरपगूळहं गुहा हितम्। अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥

ऋ. 1. 23. 14

तर्जः *एकात या जन्मे जणू फिरूनी*

परमात्मा को पाये वही, हो जाये जो अन्तर्मुखी
उससे परे कोई नहीं, प्रभु का मिलन परागति॥

ढूँढ़े ठिकाने ईश्वर, को पाने, ढूँढ़े से भी वो कहीं ना मिला
विरले ही जाने, हृदय की गुफा में देते हैं दर्शन वो परम पिता
आत्मा तो राजा, करे ना गुलामी इन्द्रियों की और देह की
आत्मा रही, प्रभु के प्रति (2) आत्मा बनी ईश्वर की हवि
॥परमात्मा को॥

मन्दिर ये मन, आसन हृदय का, ईश्वर के भावों से चित्रित हुआ
हृदय की गुफा में ईश्वर को पाने, योग आत्मा का ईश्वर से हुआ
पथिकृत है ईश्वर मार्ग सुझाते आत्मा को देते नित जागृति
चित्रबर्हि, आत्मा वही, प्रभु बिन जिसे ना सूझे कोई
॥परमात्मा को॥

अंतः गुहा में प्रकाश को पाने कर्म इन्द्रियाँ बने आत्मसखा
प्रभु मन को हरते, आनन्द भरते इससे अधिक कोई पाएगा क्या
जन्मान्तरों बाद मिलती सफलता तो आवागमन की ना चिन्ता कोई
अद्भुत आनन्द जागे स्वयं जब ईश संग आत्मा मिली
॥परमात्मा को॥

(अन्तर्मुखी) अन्तर्ध्यानी (परागति) मोक्ष, निस्तार, अमर पद (पथिकृत) मार्गदर्शक (चित्रबर्हि) परमेश्वर के भावों से चित्रित, हर समय परमेश्वर के भाव मन में लाना।

61. हमें अकृत घर ना दे

अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः॥

ऋ. 1. 104. 7

तर्जः ***एदो आशा इदलो मुदलई नदी इप्पड्डू चाड़ली निदी***

कर दी आशा कितने जन्मों की पूरी बाँधा श्रद्धा से नाता
पा ली श्रद्धा बात बड़े भाग्य की सबका तू भाग्य-विधाता
कितना मैं भटका, कितना मैं हूँ फिरा
कितनी बार उठ के गिरा॥ ॥कर दी आशा॥

भूले-भटके तेरे पास आना
तेरे प्रति श्रद्धा विश्वास जगाना
तुझसे धन सम्पत्ति का पाना
जान के तुझको अपना ही माना
तू ही तो है सुखवर्षक 'वृषा' ॥कर दी आशा॥

इतनी है तुमपे श्रद्धा-विश्वास
तृप्त ना होऊँगा थोड़े में नाथ!
लूँगा सम्पत्ति-धन जो है सुखान्त
व्यर्थ ना जान दूँ होके धर्मान्ध
ना दे घर टूटा फूटा उजड़ा ॥कर दी आशा॥

योनि दे नाथ! या घर-घाट
देना परिष्कृत भूषित परिभात
अन्न कमनीय देना हे मेरे अन्नाद!
ना ही कंगाल रहूँ ना करूँ प्रमाद
मिट्टी का घर देना ना काचा॥ ॥कर ली आशा॥

(सुखान्त) वह जिसका अन्त सुखमय हो (अभीष्ट) सिद्धि, इच्छा (वृषा) सुख वर्षक (धर्मान्ध) हठधर्मी (परिष्कृत) शुद्ध किया हुआ (भूषित) सजाया हुआ (परिभात) चमकता हुआ (कमनीय) मनोहर, इच्छित, प्रिय सुन्दर (अन्नाद) अन्न देने वाला (काचा) कच्चा, टूटने वाला (प्रमाद) आलस्य

62. तृष्णा को दूर से नमस्कार

या म॒हती म॒होन्मा॑ना॒ विश्वा॒ आशा॑ व्यान॒शे।
तस्यै॑ हिरण्यके॒श्यै निर्ऋ॑त्या अकरं॒ नम॑ः॥

अथर्व. 5. 9. 8

तर्जः *एनकुरु स्नेहदी स्नेहदी चन्द्रमा*

प्रभु दो सम्पत्ति, सम्पत्ति, हम हों पूँजीपति
हर लो निर्ऋति, निर्ऋति, तृष्णा-राक्षसी
तुझसे विनत प्रार्थना, तृष्णा शमित करो मेरी
धन सन्तोष का मिले होवे धन आघृणि॥

॥प्रभु दो॥

धन बुरी वस्तु नहीं गर कमाया सही
बँटे धन समाज में प्राणी न भूखे मरे
लूटना परधन नहीं ये वृत्ति-तृष्णा की
तृष्णा है बेअन्त रिष्ट-रध राक्षसी
बाँह इसकी इतनी लम्बी छू लेती आकाश को
व्याप रही सर्व दिशा में, सब इसी के दास तो
विरले ही वो जिनको तृष्णा तृसित करती नहीं

॥प्रभु दो॥

तृष्णा में जितना गिरे, उतना ही धँसते चले
तृष्णा मानव में अपना घर कर ले
तुष्टि ना होवे कभी, धन बहुत फिर भी कमी
लोभी कृपण कुटिल, केवल जेब भरे
अर्धनग्न आश्रयहीन को करता है वो अनदेखा
दीन दुःखी दरिद्रों को वो कभी ना कुछ देता
स्वर्ण केशवाली तृष्णा लुब्ध है रूपवती

॥प्रभु दो॥

वह अराति कृपण, उसपे क्यों मोहित हम?
दास बने इसके, दामन ना छूटे
कृच्छ्रापत्ति से, बन गई दशायें विषम

दीन बने अनादृत, बुराई-सामाजिक
कष्ट दुःख दैन्य विषम है, खड़ी है विनाश की क्रीड़ा
आओ धन वितरण करके, हरें दीनों की सब पीड़ा
तर्ष-तृष्णा की कर दें मन से इति॥

॥प्रभु दो॥

(रध) संताप देना (रिष्ट) चोट पहुचाने वाला (निर्ऋति) कृच्छ्रापाति रूप राक्षसी तृष्णा या अराति (शमित) शान्त (आधृणि) ज्वलन्त, अग्नि चमकदार (तृसित) प्यासा (अनादृत) अपमानित (तर्ष) कामना, इच्छा (कृपण) कंजूस (अराति) शत्रु, दुश्मन, स्वार्थ (कृच्छापत्ति) कष्टकारक आपत्ति (तुष्टि) तृप्ति, सन्तोष (कुटिल) चक्र, टेढ़ा (लुब्ध) लालची, लोभी (विषम) अगम्य, पीड़ाकर (इति) समाप्ति

63. सोम की विविध धारायें

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च॥

ऋ. 9. 100. 5

तर्जः *ऐन्द्रित्र वैंगिनी सन्ध्ये मनसिन्दे*

हे सोम प्रभु! तुम सहृदय कवि हो काव्य तुम्हारा है हृदयाल्हादक (2)
अद्भुत और शान्त, नव रसधारों का, सृष्टि का सृजन है अनागत॥
काव्य धाराओं में बहते बहते हे कवि! पहुँचों हृदय तक
हम हैं तुम्हारे काव्य-पिपासु (2)
आनन्द की लहरों के लिए तरसे
आनन्द मिले तुमसे, मन-हृदय सरसे॥ हे सोम प्रभु...

शान्ति की धारा के साथ कभी बह के
शान्ति से विश्व सरसाओ
हे मित्र, मैत्री धारा के संग बह के (2)
मधु-मित्रता के भाव बहाओ
भाव सत्य धर्म के, भाव अहिंसा के

॥हे सोम प्रभु...॥

सत्य की धारा के साथ कभी बह के
सत्य-अहिंसा के भाव जगाओ
कभी दिव्यता की धार में बह के (2)
विश्व की दिव्यता से नहलाओ
बहें ज्ञान कर्म में, कर्म यज्ञकृत के ॥

हे सोम प्रभु...

सत्संकल्प की लहर उठाओ
और साधकों को महर्षि बनाओ
कभी तपस्या की धार में बहके (2)
ध्यान कराओ तपस्या में
श्रद्धा-भक्ति में, सात्विक वृत्ति से

॥हे सोम प्रभु...॥

हे प्रभु साधकों के साथ बह के
ज्ञानवान कर्मनिष्ठ बनाओ
दृढ़ संकल्पों से हो जाएँ यज्ञशील (2)
ऊँचे उठाओ आत्मबलों से
बहो आत्मा में, बहो प्राणों में

॥हे सोम प्रभु...॥

(अनागत) = अपूर्व

64. प्राणों की छावनी

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन्॥

साम. 13. ऋ. 8. 102. 13

तर्जः *एन्दिनाय नीन नीड़म कन्निन तोड़म तूडीचू*

भोली भाली, स्तुतियाँ तेरे सन्देशों की
इन्द्रियों की सुन के, चेतनता हुई उठ खड़ी
मानो भाई-बहन ने एक ही कोख में लिया जनम
दिव्य सन्देशों की स्तुति-बहना, भाई में मगन
भूली सुध-बुध इन्द्रियाँ बन गईं हवि प्रतिपन्न॥

॥भोली भाली॥

हे अग्निदेव! हे देवदूत! देते रहो सन्देश
हूँ यजमान, इन्द्रियाँ बन गई हवि विशेष
मनसा वाचा कर्मणा समर्पित करें, भाई भेंट ले रहे इस बहन की।
॥भोली भाली॥

राखी में है भ्रातृ-भुजा, भाई समर्पित जीते युद्ध
माथे तिलक लगाती बहना है उत्सुक
याज्ञिक प्रतिक्षा मनोहारिणी, सरल स्नेहरूप है बहन की॥
॥भोली भाली॥

मेरा शरीर आखिर है क्या? बहती हवा का खेल
बहनो के रागों का हुआ इसमें मेल
मरुतों ने डेरा डाल रखा है प्राण-बस्ती हैं अति संघर्ष की
॥भोली भाली॥

है श्वासों की ये छावनी खेल सुघड़ जीवन का
सैनिक बना है आत्मन्, देह-भवन का
तुम्हारे सन्देश की ये भोली स्तुतियाँ तिलक हेतु छावनी में रुकी
॥भोली भाली॥

हे अग्रणी! संग्राम की आग रह लू धधकती
दिव्य सन्देश बना तेरा सैनिक
गले मिल सन्देश के, स्तुति-बहना, श्री गणेश करती है राखी तेरी
॥भोली-भाली॥

भाई है चतुर, युद्ध-आतुर यज्ञ में लगा समाने
हौसले हैं पूरे भाई के बुलन्द
हथियार भाई की सान पर चढ़े हैं, बहना की राखी में विरुद विजय
॥भोली भाली॥

(प्रतिपन्न) परिपूर्ण (छावनी) पड़ाव, डेरा (सुघड़) सुन्दर, निपुण, (विरुद) यश, कीर्ति, प्रसिद्ध (मरुत) वायु, प्राण (अग्रणी) आगे ले जाने वाला (श्री गणेश) प्रारम्भ; शुरू (आतुर) उत्सुक (बुलन्द) उत्साह से भरा

65. पवमान सोम की रस धार

प्र ते आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते॥

ऋ. 9. 86. 1

तर्जः *ऐन्दिनाय नीन नीडम कन्निल तोड़म चू*

वन्दना की तेरा स्तोता बनके प्रभुजी
हे प्रभुजी! कर दो पावन आत्मा मन बुद्धि
धारा पावन तेरी बहती, मलिनताएँ धोकर रहतीं,
प्रेरित शक्ति तेरी रहती
जिस दिशा चलते
हे इन्दु, सिन्धु।
आनन्द रस में जा रमते॥ वन्दना की...

नीचे की ओर जैसे नदी कलकल बहती
वैसे ही आनन्द स्त्रोत से आती स्फूर्ति
सही दिशा में चलने का वेग पाती है॥
मन की सङ्कल्प शक्ति॥ वन्दना की...

दृढ़ सङ्कल्प है बड़ा प्रबल, हर काम में
मन नहीं लगता है फिर आराम में
हो जाती है मन से, कर्तव्यों की पूर्ति,
स्फूर्ति में आ जाते हैं मन बुद्धि॥ वन्दना की...

कर रहा हूँ मैं ये अनुभव, हे प्यारे परमेश!
आनन्दमय कोष में है धारा प्रवेश
हर कोष को वो सरस कर रही है,
अङ्ग-अङ्ग इन्द्रियाँ पुलकित हुईं॥ वन्दना की...

हे प्रभुजी! दिव्य रसकी, बहा दो धाराएँ
पी पी के इनको हम अमर हो जाएँ
इनमें नहाकर हम होवें निर्मल,
बनाओ आनन्दी हमें हे आनन्दी!॥

वन्दना की...

66. गुरुमन्त्र गायत्री

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ऋ. 3. 62. 10 यजु. 3/35, 36/3

तर्जः *एन्देनी कन्ना यनिक्यंद कन्निला*

हे सर्वरक्षक! सच्चिदानन्द दुःखविनाशक अति सुखदायक,
हे सुखदाता! दाता!
सर्वोत्पादक हे सर्वप्रेरक ऐश्वर्यदायक तेजस्वी पावक॥
हे सर्वरक्षक...

पाप-समूह समूल-विदाहक दिव्य गुणोध सद्गुण दायक
तेजस्वरूप तरुत्र तमोहन् वन्दनीय वरणीय विपदुद्धारक
हे भूः स्वयंभूः परिभू विभू प्रभु! तुम हो गुरु, हम हैं तेरे श्रावक॥
हे सर्वरक्षक...

प्राणपति प्राणों से प्यारा चेतन है सबको चेताने वाला
दुःख से रहित प्रभु दुःख दलने वाला आनन्द स्वरूप सुख देने वाला
तेरे सान्निध्य में शुभ कर्म-कर्ता पाते हैं परमानन्द परावर॥
हे सर्वरक्षक...

दिव्य दृंहित द्योतित देव नायक! उत्तम गुण कर्म स्वभाव दायक
है प्रार्थना, प्रेरक परामृत प्रदायक पृथु-बुद्धि हेतु बनो तुम सहायक
सत्पथ के सात्विक पथिक बनके तेरे, हो जाएँ इस भवसागर के पारग॥

(विदाहक) भस्म करने वाला, जलाने वाला (गुणोध) गुण समूह, गुणों से भरा (तरुत्र) तारने वाला (तमोहन्) अज्ञान नाशक (विपदुद्धारक) विपत्ति से छुड़ाने वाला (भूः) सत्तावान, सत् (स्वयं भू) स्वयं सत्ता वाला (परिभू) सर्वव्यापक (विभुः) सर्वोपरि, शक्तिशाली (श्रावक) शिष्य, श्रवणकर्ता (दलना) कुचलना (परावर) सर्वश्रेष्ठ (दृंहित) वर्धित, विस्तार वाला (द्योतित) प्रकाशक (परामृत) मुक्ति, मोक्ष (पृथु) प्रवीण, चतुर (पारग) पार करने वाला

67. हे समर्थ परमेश्वर!

दृते दृꣳह मा। ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम्॥

यजु. 36/19

तर्जः *एन्नुम निन्ने पूजिक्याम*

जागे श्रद्धा भक्ति व प्रेम विनय की, ज्योति प्रभु मेरे मन में
मेरा हर कर्म हो तेरी देख रेख में, और तेरे ही चिन्तन में
तेरा संग तो सदा ही रहा है, मनभावन
तुझसा ना जग में रहा कोई पावन
पावन हो मेरा तन मन धन॥ ॥जागे श्रद्धा भक्ति॥

चिरकाल तक मैं जियूँ भगवन्
जिसमें हो तेरा सम्यक् दर्शन
तेरे संदर्शन से रहूँ ना जुदा
तुम मेरे जीवन हो शक्ति-आत्मा
भूलूँ ना तुझको निर्बलता वश
सांसारिक वायु न करें बरबस
इसलिये कर जोड़ करता हूँ तुझसे
ये प्रार्थना
मन से॥ ॥जागे श्रद्धा भक्ति॥

पहले तो मुझको बना दे, सुदृढ़
सुख-दुःख चिन्ता में जाऊँ ना गिर
फिर तेरे संदर्शन का हो प्रकाश
सूर्य प्रकाश सम होवे आभास
तुम्हें देखते रहने का होवे मन
तुम्हें देखे देखे ही बीते जनम
हे मेरे समर्थ परम दृढ़ आ
सखा
बनके॥ ॥जागे श्रद्धा भक्ति॥

68. इन्द्र और वरुण का आदर्श

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि। स्यादुत प्ररेचनम्॥

ऋ. 1. 17. 6

तर्जः *ओ गाति नोड़ इलिगणोद्*

इन्द्र और वरुण के संरक्षण में रहें
उनके गुणादर्शों का ही पालन करें
जुड़ जायें सत्य का धन कमाने
दुरित का क्षालन करें ॥इन्द्र-वरुण॥

अपौरुषता के कारण होते रहे निर्धन
आता रहे धन तो क्यों न बने दानी हम
चाहिये अतैव इन्द्र के आदर्श पे चलें
उचित साधनों से प्रभूत धन सञ्चित करें
होके सुमना, अभिप्रणीत धन-दायक बनें
कभी कुपथ पे ना चलें॥ ॥इन्द्रवरुण॥

धन कमाना ये आदेश है तो अपने में अधूरा
इन्द्र-वरुण के चिन्तन में ही होता पूरा
अनृतभाषी अधम को दण्ड देते रूद्रभृत्
दीनदुःखी प्रभु को भजते पा जाते वो अमृत
दया धर्म दान से तो सत्पात्र ही फलें
वैदिक मर्यादा भी बढ़े॥ ॥इन्द्र वरुण॥

पानी का तालाब जिसमें जल-निकास होवे नहीं
ऐसा जल पड़े पड़े हो मलिन अनायास ही
सञ्चित धन-दास भी मालिनता का है धनी
इसलिये निधी का हम दान से करें निकास
लोकहित-कल्याण से मानवता-विकास करें
परहित का ध्यान रखें॥ ॥इन्द्र वरुण॥

(ऋजु-ऋत) सरल सीधे पूजित नियम (अपौरुष) पुरुषार्थ हीन (प्रभूत) अत्यधिक, बहुत (सुमना) अच्छे मन वाला (अभिप्रणीत) लाया हुआ संस्कारित किया हुआ (अधम) नीच, गिरा हुआ (रूद्रभृत्) वरुण (निधी) कोष (सञ्चित) इकट्ठा, जमा

69. इन्द्र की गढ़ियाँ

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा। अवाहन्नवतीर्नव॥

साम. 495, 1210 ऋ. 9.61.1

तर्जः *ओड़ी चिरमे उन्नी चोड़ी चिरमे मुट्टतिट्टुम दिट्टी तोरिल ओड़ी चिरमे*

देहपुरी ने (देखो) देह पुरी ने
जन्म लिया ज्ञान लेने, भोग करने (2)
आत्मा के संग देखो आई रहने
आत्मा ही लायेगा इसे स्वर में — देह पुरी ने...
नौ द्वार इसके हैं आत्मा की गढ़ियाँ
मुख नाक कान मलमूत्र अङ्ग आखियाँ
अच्छा-बुरा दोनों कर सकें इन्द्रियाँ
पर क्यों ना करें कर्म शुभ-बढ़िया
सांसारिक सुख में ये इन्द्रियाँ साधन बनी
लेकिन इनपे लगाना पड़ेगा पहरा,
आत्मा लगा है पहरा देने॥ — देह पुरी ने...
गढ़ियों को कर दो ईश्वर के अर्पण
आप्लावित कर दो भक्ति का रसवन्
फिर इन्द्रियों को योग में होना है
ईशात्मा का शुभ योग दर्शन
इनके द्वारा, नित्य प्रति, प्रभु लीला, दिखने लगी
ईश्वर से प्यार होने लगा गहरा
वाह रे इन्द्रियों क्या कहने॥ — देहपुरी ने...
हे प्रभु! वात्सल्य रस को बढ़ाओ
इन्द्र पुरियों को रस में डुबाओ
कृपा कोरों की इक बाढ़ सी ला दो
खोया हुआ बालपन लौटा दो
खाना-पीना, सोना जागना,
खेलना कूदना, पढ़ना लिखना
बना सोम रस का भरा प्याला
आत्मा लगा है मस्ती लेने॥ — देहपुरी ने...

70. लोरियाँ

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत। शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः॥

ऋ. 9. 105. 1

तर्जः *ओन्निनो मल्लादे येन्दिनो कोनियुरिष्टम*

मन को तू सरसा दे
अमृत बरसा दे भगवन् (2)
दे ममत्व का वत्सल मन
बालकपन में ना छल ना कपट
वैर विरोध ना द्वेष कसक
तुम प्रभु ऐसे सुखद सरल हो
प्रेम प्रकर परमात्मा
हे प्रीतम!
करो प्रेम का सींचन
दो ममता सा मन ॥मन को तू॥

पाप की जब से हवा लगी
बालकपन अब यहाँ नहीं (2)
तुम्हीं सदा से ही सरल शिशु हो
साफ तुम्हारा है ऋतमन (2) ॥मन को तू॥

लोरियाँ शिशु को सदा ही भातीं
माँ शिशुओं को ऐसे मनाती
माता बन स्तुति-लोरी सुनाऊँ
झूमे प्रेम भरा ये मन (2) ॥मन को तू॥

कुछ ना कुछ शिशु को दे जायें
निज जीवन को हव्य बनायें
स्तुति लोरियाँ प्रभु की गायें
मन में छाए नित आनन्द (2) ॥मन को तू॥

(प्रकर) खिला हुआ, सहारा

71. काला और श्वेत दिन

अहश्च कृष्णमहर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिपाग्निस्तमांसि॥

ऋ. 6. 9. 1

तर्जः *ओरंगनादा रंगनादा*

श्वेत है इक दिन, इक दिन है काला (2)
द्युः पृथ्वी की इष्टियाँ, दोनों की निज वृत्तियाँ
इक आता इक जाता, ये खेल है आबाधा
खेल खिला रहा है प्रभु रखवाला॥ आ ऽ ऽ ऽ
॥श्वेत है॥

हुआ है कृष्ण वर्ण का ये भूतल कालिमामय घोर निशा है
सारे नक्तचर प्राणी ये घूमें उनकी अपनी इच्छा है
छा गया साम्राज्य चहुँ दिसि काले दिन का
आने वाली हैं रश्मियाँ अरुणोदय की प्रभा
नभ में देखो छा गया उजाला॥ आ ऽ ऽ ऽ
॥श्वेत है॥

श्वेत दिन और काले दिन सब आते जीवन में निरन्तर
आते कभी अन्धकार बनके लाते दुःख दीनता भयङ्कर
ना मनोगति ना दीखे प्रशस्त पथ
घोर कालिमा-घटा करती है मन्यमथ
शोकातुर मन देता कसाला॥ आ ऽ ऽ ऽ
॥श्वेत है॥

शोकातुर मन होवे चिन्तित, मचले मन समझे ना किञ्चित
ना उद्धार का मार्ग सूझे, रहे उपायों से भी विरहित
लगता है ये दुःख दुस्तर दुःख निवह
अन्तरात्मा धीरता खोये इस तरह
आत्म-सूर्य पे छाये मोह का पाला॥ आ ऽ ऽ ऽ
॥श्वेत है॥

काले दिन तो जब भी जाते शीघ्र आते श्वेत दिन
भय निराशा तामसिकता शोक होते छिन्नभिन्न
आत्म-सूर्य की प्रकाशित होती रश्मियाँ
आत्म-वैश्वानर करे उद्‌बुद्ध वृत्तियाँ
होवे हृदयंगम प्रकाश माला॥ आ ऽ ऽ ऽ

॥श्वेत है॥

सब निराशा हट-मिट जाती, आस-पुष्प खोले पंखुड़ियाँ
परिणत होता भय, निर्भय में, कष्ट हरे धीरज, धुरिया
ना अज्ञानता ना कोई दिग्भ्रांतियाँ
दृष्टिगोचर होती सत्य ज्योतियाँ
वैश्वानर का प्रकाश निराला॥

॥श्वेत है॥

(श्वेत) उजाला (दिन) समय (वृत्ति) रूख, सत्ता (आबाधा) बिना रुकावट का (कृष्ण वर्ण) काला रूप रंग (नक्तचर) रात में घूमने वाले प्राणी (अरुणोदय) भोर, सुबह (प्रभा) चमक (दीन) दरिद्र, दुःखी (हृदयंगम) आत्मसात (दृष्टिगोचर) जो दिखाई दे (पाला) धुन्ध (वैश्वानर) अग्नि, सूर्य, आत्मा (कालिमा) कालापन (मनोगति) इच्छा (धुरिया) अकेला (प्रशस्त पथ) साफ रास्ता (मन्यमथ) क्षुब्द करना (शोकातुर) वेदना से भरा (कसाला) कष्ट (दिग्भ्रांति) दिशाओं की भाँति (दुस्तर) कठिनाई से वश में आनेवाला (विरहित) रहित, शून्य (परिणत) रूप बदला हुआ।

72. इन्द्र को सभी पुकारते हैं

इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम्।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते॥

ऋ. 4. 25. 8

तर्जः *ओरू कादिलोर न्यान काण्डिला किरदादि विच्चनुम काण्डिला*

क्या ऐसे व्यक्ति को है देखा?
जो नाम प्रभु का ना लेता
खोजा बहुत ना कोई मिला, जग में
नास्तिक से नास्तिक भी कुछ तो
संकट में याद करे उसको
चाहे हो बलवान भी कितना वो

जीवन भर वो चाहे कोई
उपहास करे परमेश्वर का
पास आ के मृत्यु के उसने
ईश्वर को याद किया

अहंकार कोई कितना करे अपने आपे में दम भरे
सारे युद्धों को विजित करे, पर प्रभु के आगे झुका॥

क्या...

पर अवर व मध्यम कोटि के ही लोग हैं
तीनों ही के अपने अपने लगे भोग हैं
उच्च श्रेणी उच्च उच्च धनी
चाहे ना कोई कभी
निम्न श्रेणी चाहें उद्धार
मध्यम चाहें बने धनी

ये माँग के धुनी, माँगें कई गुनी
कोई माँगे सुखी जीवन, कोई माँगे सुखी यात्रा
कोई माँगे युद्ध विजय, कोई माँगे 'वाज' मात्रा
तभी तो इच्छा धारी, करते हैं पूजा भेंटा,

नर हो या नारी
युवा हो या वृद्ध
राजा या रंक
नास्तिक या सन्त
धनी या श्रमिक
वीर हो या कायर
हर मन में छाई आशा

73. दिति और अदिति के भाग

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमवं देवानां बृहतामनर्मणाम् ।
तेषां हि धाम गभिषक्समुद्रियं नैनान्नमसा परो अस्ति कश्चन॥

अथ. 7/8/1

तर्जः *ओरुगुयाय पुड़ पोले*

मार्ग अदिति का खोलें (2) आत्मन्
भाव अमृत के घोलें (2) आत्मन्
पुत्र दिति के मार भगायें
अदिति-पुत्र अपनायें—आत्मन्

दिति और अदिति दोनों हैं मुझमें
केवल अदिति जरूरी (2)
ईर्ष्या-द्वेष मद स्वार्थ लोभ भय
दिति करें लक्ष्य से दूरी, आत्मन्

॥मार्ग अदिति॥

करुणा प्रेम वैराग्य निर्भयता
परोपकार निष्कामता (2)
अदिति जनित ये भाव सनातन
भरित है इसमें विनयता-आत्मन्

दिति-अदिति संघर्ष कर रहे
मेरे हड़क हृदय में (2)
देव अदिति के रहे अपराश्रित
दिति-पुत्र देवाश्रय में—आत्मन्

॥मार्ग अदिति॥

दैव भाव का तेज है अद्भुत
सत्य है जिसका आश्रय (2)
दुर्भावों में शक्ति नहीं है
ना कोई उनका आशय-आत्मन्

॥मार्ग अदिति॥

दिव्य तेज अखण्ड प्रकृति का
अक्षय जलधि से पाते (2)
ये मेरे दुर्भाव क्षुद्र हैं
तेज का पार ना पाते—आत्मन्

॥मार्ग अदिति॥

भाव अदिति में अगाध है नम्रता
सविता जैसा ललित है (2)
इस अखण्ड शक्ति के यज्ञ में
सात्विक कर्म फलित है—आत्मन्

॥मार्ग अदिति॥

अचल प्रतिष्ठ दैव भावों की
विजय सदा होती है (2)
दिति के दैत्य संग्राम में हारें
उनमें शक्ति ओछी है—आत्मन्

॥मार्ग अदिति॥

शक्ति अखण्ड अदिति से पायें
दैव भाव अपनायें
दिति पुत्रों को मार भगायें
भाव विनम्र जगायें—आत्मन्

॥मार्ग अदिति॥

नीसा नीसा नीसा नीसा
नीसा नीसा रेम रेम 4 ऽ ऽ ऽ

(दिति) खण्डित होने वाली विकृति माया, (अदिति) अखण्डित रहने वाली प्रकृति, मूल शक्ति, (दितिपुत्र) आसुरी भाव (अदिति पुत्र) सनातन भाव (जनित) पैदा करने वाले (हड़क) व्याकुलता अत्यन्त अभिलाषा (ओछी) क्षुद्र, तुच्छ, हलकी (अपराश्रित) स्वतन्त्र (आशय) उद्देश्य, आधार, तात्पर्य, (अक्षय-जलधि) परमात्मा (अक्षय जलधि) अखण्ड सागर परमात्मा, (क्षुद्र) नीच, अधम (ललित) मनोहर, सुन्दर (फलित) फल देनेवाले (अचल प्रतिष्ठ) सदैव प्रतिष्ठावान (अदिति के गुण) परोपकार, करुणा, प्रेम, निर्भयता वैराग्य निष्कमता आदि (दिति के अवगुण) स्वार्थ ईर्ष्या, द्वेष, भय, अकर्तव्य काम लोभ आदि।

74. सत्य नियम का सृष्टा

प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति।
ना श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते, वयो न पप्तू रघुया परिज्मन्॥

ऋ. 2. 28. 4

तर्जः *ओरु गुगुयाय पुड़पोले*

बोलें तो सत्य ही बोले (बोलें)
प्रभु जगसृष्टा जग का विधाता
सत्य नियम को तोले (तोले) ॥बोले तासे॥

(1) सत्य नियम ही, प्रभु की महिमा
जग हर सत्य को खोजे (2)
सत्य नियम बिन प्राप्त नहीं कुछ
ज्ञान के यही द्वार खोले (खोले) ॥बोले तो॥

(2) जब तक प्रभु नियमों को चलाते
जगत बना ही रहता
बन्द करते जब नियमों का चालन
प्रलय इसी से होले (होले) ॥बोले तो॥

(3) ओषजन और उद्रजन तत्त्व
जल भण्डार बनाते (2)
सूर्य, ताप से मेघ बनाते
बरसे वर्षा ओले (ओले) ॥बोले तो॥

(4) यही वर्षा जल, थल से बहकर
नदी रूप बन जाए
जन कल्याणी बन के नदियाँ
निज सागर की हो ले (होले) ॥बोले तो॥

(5) हे जग सृष्टा सत्यविधर्ता
सत्य सामर्थ्य जगा दो
सत्य धर्म का धनी बना दो
भरें जग सत्य से झोले (झोले) ॥बोले तो॥

(ओषजन) आक्सीजन (उद्रजन) हाईड्रोजन

75. सखा

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

ऋ. 1. 94. 1 साम. 66. 1064

तर्जः ***ओरु पूविने निशा शलभम्***

चलो गायें हम प्रभु-महिमा, प्रभुवाणी का करें दर्शन
हो रहे प्रवाहित हृदय में मन्त्र वारे न्यारे जायें हम
आज अग्निदेव की स्तुति करें, करते जायें गुण का गायन
॥चलो॥

हृदय कुण्ड से अग्नि-ज्वाला, मीठी लय से हो जागृत
गाये अग्नि मीठे स्वर से, रोमरोम करे आकर्षित
आग सी दौड़े अंग अंग रग में, रास्ता मिला है नया
चलते थे कल तक पंगु बन, बने महारथी अद्यतन॥
॥चलो॥

जिस लंगड़े को रथ मिल जाए, मानो मरा हुआ जी उठे
इसी तरह रूकी-गति चलित हुई,जब जब वेद के स्तोम सुने
मन मस्तिष्क हृदय स्तोत्रो से, हुआ जागृत जीवन-मधुमय
इस पर अपने जीवन का नैवेद्य चढ़ायें क्यूँ ना हम॥
॥चलो॥

जीवन-धन का धनिक देव वो, अग्नि देव है जातवेदाः
उसकी विभूति श्रेष्ठ है अनुपम सोतों को भी देता जगा
गूँगों को वाचाल बना दे, बिन लाठी पंगु लगें चलने
मालिक वो ऐसी सम्पत्ति का, मृत के, अमृत करे जनम
॥चलो॥

अग्निदेव के सत्संगों से सुसंस्कृत हुई बुद्धि स्वयं
मति-मति में इक ज्वाला है, है आलोक आग्नेय उत्तम
इस मति का उद्देश्य है सर्वतृ, करते रहना जग कल्याण
उत्तमता को प्राप्त है प्रज्ञा, दूर करके छल-छिद्र जलन
॥चलो॥

अग्नि देव मैं तेरा पुजारी, तव गीतों का हूँ गायक
बना सभासद यज्ञ-संसद का, तेरे सखा के हूँ लायक
पैनी-बुद्धि खड्ग नहीं है सुई सम सीती फटे चिथड़े
यज्ञ मण्डप में यज्ञ की बातें सोचते हैं यजमान प्रथम
॥चलो॥

अग्नि देव के संजीवन से जीवित होकर उठ गये हम
जातवेदा को सखा बनाकर, दूर कर दिये सारे तम
अग्निदेव का उदित उपासक, करे ना हिंसा नाही हदन
प्राप्त हुई जीवन ज्योति को, पायेंगे हमसे जन-जन
॥चलो॥

अग्निदेव हमें सखा बनाओ, बाँट दो अपनी कुछ ख्याति
जलने और जिलाने वाली दे दो जातवेदस बाती
जीने और जिलाने वाली एक चिंगारी भी बहुत हुई
अभिलाषायें यज्ञाग्नि की फिर क्यों ना पायें उन्नयन
॥चलो॥

(अद्यतन) आज ही (स्तोम) स्तुति समूह (ज्ञातवेदा) जीवन धन का मूल (वाचाल) चतुरवाणी (उन्नयन) उन्नति (खड्ग) तलवार (हदन) बध

76. सच्चे भक्त केवल मधवन् परमेश्वर से माँगते है

न त्वाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवा न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निद्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥

ऋ. 7. 32. 23

तर्जः *ओरू रात्री कोड़ी विडवांगवेः*

प्रतिभा भरे हैं प्यारे प्रभु
सारे जगत के अधिभू विभु
ऐश्वर्यशाली मधवान् दानी
पालक-पोषक हैं वो परिभू॥

प्रतिभा भरे...

द्युलोक में ना पृथ्वी पे भी ना उससे बड़ा ना है कोई भी
कारण यही के गौ अश्व धान्य धन के लिये बने प्रार्थी (2)
मघवान वो तो केवल नहीं सर्वैश्वर्यों का है स्वामी इन्द्र
संसार का है वो अधिपति अन्तःकरणों का है निवासी (2)

प्रतिभा भरे...

है वो दिव्य शुद्ध बलवान धीर है तपस्वी मनस्वी और गम्भीर
वो शूर भी है निर्भय भी है ना उसके जैसा कोई भी वीर (2)
इतना सशक्त इतना धनी है पूर्ण ज्ञानी दानी है वो गुणी
वो शान्त है परम तृप्त है, होता नहीं कभी वो अधीर (2)

प्रतिभा भरे...

गौ अश्व अन्न पशु ज्ञान बल माँगे तो कामना करे सफल
क्यों ना पुकारें दिव्य दानी को सारे जगत में जो रहे प्रबल (2)
उसका सहाय उसकी दया सद्प्रेरणायें कौशल-कृपा
क्यों कर ना चाहें क्यों कर ना माँगे दीपक जलायें हम अलख का (2)

प्रतिभा भरे...

(प्रतिभा) अत्यंत बुद्धिमानी (अधिभू) स्वामी (विभु) सर्वव्यापक (मधवान्) धन ऐश्वर्यी का स्वामी (परिभू) परिपालक, चारों ओर से आच्छादित

77. ज्ञानीजन प्रभु को स्वात्मा में देखते हैं

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥

ऋ. 1. 22. 20

तर्जः *ओरु रात्री कोड़ी विडवान्गवे*

द्युः से प्रकाशपुञ्ज फैलते
हम ऐसे सूर्य को देखते
व्यापक प्रभु भी है सूर्यसम
स्वात्मा में योगी उसे देखते (2)

द्युः से...

जो 'सूरि' स्तोता पुरुषार्थी हैं वही प्रभु का भक्त प्रभु प्रार्थी है
वो भक्त हस्तामलकवत् अनुभव करता है वो आपी है (2)
जैसे के देखते हैं बाह्य रूप में रश्मियों के माध्यम हैं सूर्य
'सूरि' भी वैसे करता प्रभु का साक्षात्कार वो अपूर्व (2)

द्युः से...

साक्षातकार प्रभु का करें आओ भक्तो हम भी सूरि बनें
पुरुषार्थी स्तोता साधक बनें हम ध्यानी भक्त सच्चे बनें (2)
जिससे हमारे जीवन में भी सौभाग्यशाली घड़ी आ सके
साक्षात्कार पा कर प्रभु का आनन्द विभोर हो सकें (2)

(हस्तामलकवत्) वह वस्तु या समय जो अच्छी तरह समझ में आ गया हो (आपी) आप ही, स्वयं (सूरि) बुद्धिमान

78. उसका पार कोई नहीं पा सकता

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम्॥

ऋग. 1. 24. 6

तर्जः *ओरुसनम पूँजीरचे उदकाते*

हे भगवन्! तुमने रचे सूर्य चन्द्र व तारागण
नियमित मार्ग पे करते हैं निज परिधियो में ये भ्रमण॥
हे भगवन्॥

(1) सह भी अतिशय है न्याय में अनुनय है
सुखों का वो दाता है
किन्तु अल्पज्ञ हम रहस्य ना जानें हम
कैसा वो विधाता है, कैसा हमसे नाता है
प्रभु से नाराज़ होके अपशब्द करते रहते
किन्तु प्रभु सब कुछ सहते, यथायोग्य पालन करते
क्रुद्ध ना होते
क्रोधी नहीं, मन्यु प्रभु, सात्विक मन आजमाते हैं
मार्ग सही जाएँ हम इसलिये दण्ड देते भगवन्॥
॥हे भगवन्॥

(2) प्रभु का क्षत्र बड़ा, न्याय है उसका कड़ा
ब्रह्माण्ड पर है प्रभु का राज
अनन्त है आकाश करे क्या कोई आभास
जाने ना उसका पारावार ब्रह्माण्ड से भी वो है अपार
अमृतमय स्वरूप प्रकाशित, उस प्रभु का है अविनाशी
प्राकृतिक जगत से आगे प्रभु की अनन्त है सीमा!
अनन्त सीमा!
मेरे आत्मन् कर लो नमन मन्युवाले हैं सात्विक भगवन्
आज्ञा में उसकी चलते रहो, दोनों लोकों में रहो प्रसन्न
॥हे भगवन्॥

(सह) सहन करने वाला (क्षत्र) बल (मन्यु) न्यायप्रिय (अनुरस) विनम्रता

79. सच्चे सम्राट वरुण द्वारा आत्म सम्राज्य स्वराज्य प्राप्त

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्याइस्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥

ऋ. 1. 25. 10

तर्जः *ओरे मनम ओरे गुनन ओरे इदम सुगम*

वो है वरुण वो है करुण, हृदय में वो देता दर्शन
साम्राज्य जो हृदय में है,करता वरुण उसपे शासन
ब्रह्माण्ड का सम्राट अखण्ड, हृदय में भी आसन्न॥
वो है वरुण...
देना चाहे हमको साम्राज्य, इसलिए तो अन्दर बैठे
मूर्ख हैं हम जो कुछ ना समझें नियमों को भंग हम करते
राज्य बाहरी पाने को हम लड़ते झगड़ते
मार-काट गाली-गलौच ईर्ष्या मद करते
वरुण देव साम्राज्य विश्व का देने को बैठे
पर हम ना जागे वो हैं वरुण...
धीरन दीमतनन धीरन दीमतनन धीरन दीमतनन. धीरनना (2)
नादिरद दुमतनन, दुमतदुमतनन (2)
नादिरद दुमतनन, दुमतदुमतनन (2)
नादिर दानी तुमदिर दानी, नादिर दानी तुमदिर दानी, तोमतोम
तोम... वो है वरुण...
वरुण प्रभु तो धृतव्रत हैं नियम न उनके कभी टूटे
शोभन कर्म से है 'सुक्रतु' कर्म बुरे ना प्रभु करते
हम भी सत्य नियमों को कभी ना भंग करें
सत्यव्रतों का पालन करके वरुण का संग करें
क्यों ना बने सम्राट विश्व के, शोभित कर्मों से
हो बादशाह जग के॥ वो है वरुण...
सत्य व्रतों के पालन कर्ता भोग रहे हैं सुर-साम्राज्य
हर्ष ध्वनि से वो कह उठते महापद कर लिया मैंने साध्य
कैसा सुन्दर सुदत्त सुदर्शन! हुआ हूँ मैं तो धन्य

बरखा वरुण-कृपा की बरसी वरुण बना पर्जन्य
हे वरुण! जो पाना था बस मैंने पा लिया
हुआ मैं अमृत रे॥ वो है वरुण...

(धृतव्रत) अटल व्रतों का धारण कर्ता (सुक्रतु) सदा शोभन कर्म करने वाला (पर्जन्य) मेघ, बादल (सुदर्शन) शुभ दर्शन (सुदत्त) अच्छी तरह दिया हुआ

80. हे माँ सरस्वती!

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥

ऋ. 2. 41. 16

तर्जः *ओ साईनवा अड़गुकुल साईनवा*

हे शारदे, हृदय में तू समा
हमें भगवती चेतना से भाग्यवंत बना
सुसंस्कारों के, बीज कर वपन
तेरी प्रेरणा की धाराओं में मन को लहरा॥ हे शारदा...
हमने किया है आत्म निरीक्षण तो ये लगा
हम पे अनार्ष ग्रन्थों का ऐसा पड़ा परदा
अप्रशस्त ज्ञान लेके कर्म में पड़ा
सच्ची उपासना का रास्ता भी दूर हुआ
मूर्ति वनस्पति वृक्षों को माना ईश्वर
मानव समाज इस तरह से भटक गया हे शारदा...
मन और आत्मा बने हुए हैं मरुस्थल
तू सरस सरस्वती की मञ्जुल धार बहा प्रबल
तू दिव्य देवी है के तुझमें ईश-प्रेरणा
सुसंस्कारों की तू बहती हुई नदिया
निज पयोधरों से दिव्य अमृत की धार बहा
पशुता से बचाकर मानव से देवता बना॥ हे शारदा...

(अनार्ष ग्रन्थ) जो वेद के आधार पर नहीं (मञ्जुल) मनोहर, सुन्दर (पयोधर) स्तन।

81. विकलांगों के प्रति सद्भाव रख

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम्।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात्॥

ऋग. 10. 27. 11

तर्जः ***कळले निन कईगिडिच्चा कडलोडम वेन्निलावु***

क्या कोई विकलांग हो तो क्यों नहीं उसे समझें अपना
उसके प्रति द्रवित रहें मन सहानुभूति उसपे रखना
अन्धे को अन्धा ना कहना बाबा सूरदास ही कहना
हृदयी दर्याद्र आँखें ममता से भरके रखना
भावना सहायता की अपने हृदय में भरना
हाथ उसके सर पे रखना मीठे वचन बोले रसना॥
॥क्या कोई॥

इनकी भी तो है अभिलाषा, बोले ये हृदय की भाषा,
हृदय इनका है अनुनायिन,
सूरदास हों या पंगु इन सबमें बसते विधाता,
उनके प्रति भाव रख अप्रतिम,
सोचो कभी अपनी पुत्री होती विकलांग ऐसी,
ऐसी अवस्था में भी कहते उसे रानी बेटी,
और यदि कोई करता पाणिग्रहण,
होते सजल नयन,
ना कीना, जिसने भीना, निज हृदय, वो अधम॥
॥क्या कोई॥

इसलिये ही आज से आओ जीवन में ले लेवे व्रत
करें मदद विकलांगों की स्वयं
भावना ममत्व की मन में उनके प्रति कर लें जागृत
पूर्ण रूप से वो रहें प्रसन्न
राष्ट्र और समाज से भी दिलायें उन्हें सहारा

जागृत करें उनके लिये क्रतु-कर्तव्य हमारा
आतुरालय शिक्षणालय, खोलें हम
हों ऋण से उऋण
ना कीना, जिसने भीना, निज हृदय, वो अधम॥

(दयार्द्र) दया से भीगा (रसना) वाणी (अनुनायिन) सभ्य, विनीत (सूरदास) नयनहीन (अप्रतिम) सदृष्य, विनयी (पंगु) लंगड़ा (पाणिग्रहण) विवाह (अधम) गिरा हुआ (क्रतु) संकल्प (आतुरालय) रोगी-पीड़ितों का घर।

82. पास जाकर स्तुति कर

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम्

साम. 32. ऋ.1. 12. 7

तर्जः *कळलोळम नोगुकड़ी कलयोळम सांद्रवनमा*

गीत स्तुति के गा तू सदा स्तोता बन ऐ मेरे मन!
अगुआ बना किसी देव को, उन्नत कर ले निज जीवन
(और) कर ले धर्माचरण (2)॥
॥गीत स्तुति के॥

जिन सिद्धान्तों के सहारे स्थिर हुआ है ये संसार
कहते हैं उसे धर्म, विश्व की सत्ता का जो आधार
ऐ मेरे मन! शीलवान किसी देव का स्तोता बन
यज्ञरूप दान करना देव का है नित नियम
यज्ञ की वेदी पर भाव रखना इदन्नमम्॥
॥गीत स्तुति के॥

देना लेना शीलवान का जीवन का इक यज्ञ है
दृष्टि उसकी नहीं संकुचित सबमें व्यापक प्रज्ञ है
भौतिक आध्यात्मिक तत्वों का वो करता रहता दर्शन
यही तत्व हैं धर्म के लक्षण सार्थक करता निज जीवन
शीलवान रहे द्युतिमान, रहता है वो ऋतधामन्॥
॥गीत स्तुति के॥

मेरे मन! ऐसे कवियों को बना के रखना अग्रणी
यत्न पूर्वक सम्मुख जाकर, करना, उनकी संस्तुति
पाठ सत्य का सीखते रहना, ऐसे देव हैं अतिगुणी
ईर्ष्या द्वेष से रहित बना देते हैं गुणवान सुधी
सामाजिक कर्तव्य निभा ले यज्ञ-बुद्धि से ऐ मन!

ऐ मन! यज्ञाग्नि के स्तोत्र के गीतों को तू गा
इसी स्तोत्र से होके क्रियात्मक याज्ञिक जीवन निभा
सत्य अहिंसा की प्रतिभा बन यज्ञस्वरूप बन अनुत्तम
शीलवान से दूर ना रहना कर सान्निध्य मेरे मन!
भेद रहे ना मुझमें उसमें कर स्तोतव्य का संसर्जन॥

॥गीत स्तुति के॥

(स्तोतव्य) स्तुति करने योग्य (स्तोता) स्तुति करने वाला (अगुआ) अग्रणी, आगे ले जाने वाला (संसर्जन) संयोग (इदन्नमम्) यह मेरा नहीं है (संकुचित) तंग हुआ (प्रज्ञ) विद्वान (शीलवान) विनम्र सत्यधर्मा (द्युतिमान) प्रकाशित (ऋतधामन्) सच्चे पवित्र स्वभाव वाला (संस्तुति) भली प्रकार प्रशंसा (सुधी) बुद्धिमान (स्तोत्र) स्तुति (अनुत्तम) सबसे अच्छा, सर्वोत्तम।

83. ब्रह्म चोदनी आरा..

यां पूषन् ब्रह्म चोदनीम् आरां बिभर्ष्याघृणे
तया समस्य हृदयम् आरिख किकिरा कृणु॥

ऋ. 6. 53. 8

तर्जः *कन्डमिरे कन्डमिरे कन्मनी*

हे पूषन्! पोषक देव! तुम हो आघृणि,
सद्गुण की ज्योति दो, ज्योति पावनी॥
सब होवें ब्रह्मपरायण हों आत्म-सुदर्शी जनजन॥
पूर्ण समाज हो श्रद्धामय, हो ब्रह्मराष्ट्र पावन॥
॥हे पूषन्॥

रहते समाज में पर, ब्रह्मत्व में न रहते
आस्तिकता में शंकित रहते
जग को खेल प्रकृति का समझें, आ ऽ ऽ ऽ
वेदादि में रखें न आस्था, धर्म-कर्म से दूर जा हटा
दान पुण्य से न है वास्ता, मन संशय में रहे भागता
कहता जैसे गेंद भूमि पर, पटकें जितनी वेग पर
उतनी ही ऊँची जाती, ये दृष्टिकोण है दुष्प्रभावी॥
॥हे पूषन॥

इन परास्त लोगों की, स्वार्थ-दृष्टि बिन्दु में
ब्रह्मतत्व की भरो दीप्ति, आस्था को करो सिन्धुमय आऽ ऽ
ब्रह्मचोदनी आरा से करो ब्रह्मभावों को उन्नत,
बेधनी आरा सामने लाओ बल से नास्तिकता को भेदो,
नास्तिक हृदय-पलट पलटकर, आस्तिकता के भाव लिखो,
कर उत्कीर्ण, पका दो शब्द, मिटना जाये घृणि
॥हे पूषन॥

(दुष्प्रभावी दृष्टिकोण) लोग कहते हैं संयम के नाम पर जितना दबाओ उतना तृष्णा जोर मारती है यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है।

(पूषन) पोषक परमेश्वर (आघृणि) दीप्तिमान, (ब्रह्मणपरायण) वेदों पर चलने वाले (ब्रह्मचोदनी) ब्रह्म प्रेरिका (आतमसुदर्शी) आत्म दृष्टा (घृणि) ज्वाला (उत्कीर्ण) उठाना

84. दुर्बुद्धि लोगों की दुष्टता के विरोध में सामूहिक आवाज़

पूर्वी देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

ऋ. 1. 94. 8

तर्जः ***कण्डुन्यान कन्ननी कायाम्बुवर्निनी***

याज्ञिक, परोपकारी, प्रभुभक्त, पुरुषार्थी
अर्पित करते हैं यज्ञ में सोम रस
और यज्ञशेष का फिर करते हैं भोग
कहते हैं ऐसों को सुन्वान सब
दूजा है सोम रस भक्तिरूप तर्पण
तीजा है कर्मरस में डूबा मन प्रतत (2)

॥याज्ञिक परोपकारी॥

रस है मनोहर अति सुखदायी
कर दे शमित त्राहि त्राहि
सबसे आगे हो तेरा रथ
चलता चल याज्ञिक राही

॥याज्ञिक परोपकारी॥

1. विद्वत् जनो, ध्यान तुम रखो
दुष्ट बुद्धि वालों को खण्डित करो
शान्ति भंग करें जो धात-पात में
वाणी लेखनी से तुम विरोध करो
या तो वे ठीक कर लेवें दुष्ट बुद्धि-रोग
या फिर वे दण्ड-भागी बनें ऐसा कुछ करो (2)

॥याज्ञिक परोपकारी॥

2. हे राष्ट्र के विद्वत् जनों
होके इक स्वर के वचनबद्ध तुम रहो
पूर्ण बहिष्कार दुरितों का करो
दुष्ट बुद्धिवालों की न दाल गलने दो

उनके षड्यन्त्रों का दलन तुम करो
करो यत्न, सद्बुद्धि उनमें जागृत हो (2)

3. काषाय वस्त्रधारी सन्यासियो
चुन रहे हैं नेता तुम्हें तेजस्वियो
सर्वप्रिय तुम हमारे मित्र बनो
सद्बुद्धि वालों का तुम सख्य करो
दुर्बुद्धि पाखण्डियों को मात दो
सुदृढ़ समाज बनाने में सफल रहो (2)

(सुन्वान) यज्ञार्थ सोमरस निचोड़ने वाला (तर्पण) संतुष्ट होने की क्रिया (प्रतत) विस्तृत (शमित) शान्त

85. तन तन्त्री

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥

साम. 112. 1413 ऋ. 8. 19. 3

तर्जः *कन्डून्यान कन्ननी कायाम बुवरननी*

अग्नि देव तुम्हें अपने जीवन के यज्ञ का, 'होता' स्वीकार करते हैं हम
ऐसा ये 'होता' जिसका आवाहन, शाश्वत है होता नहीं उत्सन्न
मर जायें चाहे जल जायें हम, ना रहे, जीवन की ज्योत, ना ही तन-मन
पर तुम्हारी अमर ध्वनि सुनते रहें जन, सुनते रहें जन-जन
॥अग्नि॥

अमर मनोहर, कीर्ति तुम्हारी, बन गया देव अङ्ग अङ्ग
भोला गवैया तान में मस्त हैं तान सुनाये हरदम॥
साथी सबके सब मरघट तक के, पर हमारे संग तुम शाश्वत से हो
यज्ञ का सङ्कल्प, और यज्ञ-ज्ञान यज्ञ-क्रिया सबकी तुम आवाजें हों
तुमसे ही जाना है, इस यज्ञ का रहस्य, आवाज़ तब से अग्निदेव हमने ली है सुन (2)
॥अग्नि॥

लिया ज्ञान ने, सङ्कल्प को धारण आवाज अब तम्हारी बनी बल की आयतन
सङ्कल्प ने क्रियारूप किया धारण अन्तः यज्ञ, बाह्य-यज्ञ, हो गये इक मन
अन्तःकरण-हृदय-मन कर रहा हवन, अब पुकारने लगा है रोम-रोम यजन (2)

॥अग्नि॥

'होता' तुम रहे, आवाज़ देने वाले, श्रोता सुनने वाले हम मस्त रहने वाले
इक ओर देव, दूजे यजमान, दो स्वरूपों का रहस्य सफलता ढ़ाले
करनी-कथन है एक, स्वभाव भी है नेक, सङ्कल्प ज्ञान आचरण के कान करें श्रवण (2)

॥अग्नि॥

तीन कानों ने आवाज को सुना, जो आवाज सुन ली वो कराया-किया
मृत्यु है कहाँ, इस अमर यज्ञ की, वास्तविक जीवन को शुद्धरूप ने किया
हर सोच में मेरी, आवाज है तेरी, इच्छा करूँ तो उसमें बोल पड़ते हो तुम

॥अग्नि

इच्छा-चेष्टा-ज्ञान आवाहन है नीक, इसमें सजे हैं तेरे मनमोहक गीत
यज्ञरूप बन, हो गया सम्पन्न, इक परोक्ष शक्ति से खिंच रहा है मन
नगरी में देवों की आके किया धारण, बने अङ्ग-अङ्ग देव करके तुझको वरण (2)

होता हो तुम, और मैं हूँ देव, तुम यजिष्ठ' मैं यजमान मार्ग श्रेय
यजमान के अन्दर ही आग, ज्ञान कर्म सङ्कल्प ही जिसका ध्येय
इस अमर गान की यज्ञ रूप आग, तब अनुष्ठान से करती है निर्धारण

॥अग्नि॥

(उत्सन्न) नष्ट, (मरघट) श्मशान (होता) यज्ञकर्ता (आयतन) आश्रय (यजन) यज्ञ करना (नीक) स्वच्छ (परोक्ष) जो सामने ना हो, छुपा हुआ हो (यजिष्ठ) होता और यजमान, यज्ञ करने वाला (निर्धारण) निर्णय (श्रेय) कल्याण, श्रेष्ठ (अनुष्ठान) नियमपूर्वक काम करने वाला।

86. नमः ने द्यावापृथिवी को धारा है

नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे॥

ऋग. 6. 51. 8

तर्जः *कण्डे कण्डे कण्डेकण्डे का दलई*

झुकते झुकते पाप जीवन के धुल गये
रास्ते प्रायश्चित्तों के भी मिल गये
शक्ति बहुत है नमन के भीतर
नमन में तो मिल जाते ईश्वर
नमन ने ही तो द्यावा पृथिवी को किया धारण
रात-दिवस का चक्र है सूर्य का
हुआ ये सम्भव नमन के कारण
कितने जीवन नमन के कारण
खिल गये, खिल गये, खिल गये, खिल गये॥

॥झुकते झुकते॥

द्यावा-पृथिवी से मैं शिक्षित होकर
सीखूँ नमन हे विद्वज्जन!
स्पर्श करूँ तव चरण की रज को
बन जाऊँ वन्द्य हो जाऊँ धन्य
चरणों में लोटूँ मैं माता देवी के
पिता पाये सेवा मुझ सत्वर सेवी से
मात-पिता को मैं सीस नावाऊँ
वो भी श्राद्धित इस हृदय से (2)
श्राद्धित श्राद्धित श्राद्धित श्राद्धित

॥झुकते झुकते॥

देव विद्वत गुरुजन उनको करता निर्मल मनसे
सादर वन्दन!
देखते ही करबद्ध मेरा नमन हो निर्मद
अनुशीलन से

देव भी पसीजते हैं प्रायश्चित कर्ता से
होते हैं क्षमितव्य अपनी विनत प्रज्ञा से
अपने कुछ अपराध लिये
प्रायश्चित का भाव लिये
मिले दण्ड हर अपराधी को
अघ का अघ का अघ का अघ का

॥झुकते झुकते॥

(सत्वर) शीघ्र (निर्मद) अभिमान रहित (क्षमितव्य) क्षमा करने योग्य (अघ) पाप दुरित

87 विश्वानर देव का महान बल

प्र वो॑ म॒हे मन्द॑माना॒यान्ध॒सोऽर्चा॑ वि॒श्वान॑राय विश्वा॒भुवे॑।
इन्द्र॑स्य॒ यस्य॒ सुम॑खं॒ सहो॒ महि॒ श्रवो॑ नृम्णं॑ च॒ रोद॑सी सप॒र्यतः॑॥

ऋ. 10. 50. 1 य. 33/23

तर्जः *कन्नमा विन्नई चरण दिन्दे*

लो वन्दना विश्वानर, हे देव!
सकल विश्व में व्यापक हो तुम
आनन्दमय हो सदैव॥ ॥लो वन्दना॥

ऐ मन! कर उस देव का पूजन
एक वही जग में परिपूरण
देता सुख और स्नेह॥ ॥लो वन्दा॥

तेज, बलों का वो भण्डारी
जिसने द्युः नभ पृथ्वी धारी
है महिमा अप्रमेय॥ ॥लो वन्दा॥

सकल लोक ब्रह्माण्ड भुवन सब
नियम से नियमन करें अनवरत
वो है अपरिमेय॥ ॥लो वन्दना॥

देह प्रभु का विश्व ये सारा
सब आत्माओं का वो प्यारा

देवों का अधिदेव॥ ॥लो वन्दना॥

परिचर्या सब उसकी करते
आंशिक बल यश सेवन करते
पूजें इन्द्र प्रतिगेह॥ ॥लो वन्दना॥

विश्वानर = विश्वव्यापी देव, परमात्मा (अप्रमेय) अपार, अनन्त, जो जाना नापा ना जा सके (अनवरत) सतत निरन्तर (नियमन) नियमबद्ध करने का कार्य (अपरिमेय) अगणित, असंख्य (परिचर्या) पूजा, सेवा (प्रतिगेह) घर भर में

88. परम जातवेदा मुझे श्रद्धा और मेधा दे

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु॥

अथ. 19. 64. 1

तर्जः *कन्ना कन्निरून्नि काया*

समिधा को अग्नि मिली, झट से वो जलती गई (2)
जलते जलते हुई अग्नि स्वरूप समिधा में अग्नि छिपी॥
॥समिधा को॥

जिज्ञासु समित्पाणि होकर गुरुओं के पास आ जाते (2)
अपने को समिधा बनाके शिष्य शिक्षा गुरु से पाते
वैदिक विधीसे गुरु, शिष्यों के हृदय में करते उद्दीप्त यज्ञाग्नि॥
॥समिधा को॥

मैं जानता हूँ उद्दीप्त होना काम बड़ा है कठिन (2)
खुद को तपाना पड़ता है तप करना पड़ता है प्रतिदिन
सङ्कल्प हो पूर्ण श्रद्धा भी हो, हो ज्ञानानुसार अनुकृति
॥समिधा को॥

श्रद्धा व मेधा ज्ञान की धारक उसको कहाँ से मैं पाऊँ? (2)
आचार्य देव जो है जातवेदा उनसे ही शिक्षा मैं पाऊँ?

उनके बिना समिधान ना सम्भव ज्ञानक तो रहते सदा अग्रणी
॥समिधा को॥

दैनिक हवन में काष्ठ समिधायें अग्नि के हेतु जलाता हूँ (2)
समिध आत्मा मन शरीर से आचार्याग्नि मैं उनसे पाता हूँ
इन समिधाओं से, राष्ट्र धर्म सेवाकर, बनता हूँ मैं तेजस्वी॥
॥समिधा को॥

ईश्वर श्रेष्ठ बृहत् जातवेदा है सर्वज्ञ अग्नि स्वरूप (2)
गुरुओं का गुरु 'अग्नियों' का 'अग्नि' करे जगत को जागरुक
श्रद्धा व मेधा की करूँ याचना, प्रभु इन सबका है अधिपति॥
॥समिधा को॥

(जिज्ञासु) ज्ञानप्राप्त करने का इच्छुक (समित्पाणि) जिसके हाथ में लकड़ियाँ हों (समिधा) हवन की लकड़ियाँ (मेधा) धारणावती बुद्धि (श्रद्धा) सत्य का धारण (अग्नि छिपी) आत्मसात होना (उद्दीप्त) प्रकाशित होना (अनुकृति) अनुकरण (जातवेदा) ज्ञानयुक्त अग्नि (समिधान) प्रकाशित करना (ज्ञानक) ज्ञान दने वाला (अग्रणी) आगे ले जाने वाला

89. हम उषा काल में तेरी स्तुति करें

तव॑ व्र॒ते सु॒भगा॑सः स्याम स्वा॒ध्यो॑ वरुण तुष्टु॒वांसः॑।
उ॒पाय॑न उ॒षसां॒ गोम॑तीनाम॒ग्नयो॒ न जर॑माणा॒ अनु॒ द्यून्॥

ऋ. 2. 28. 2

तर्जः *कन्ना कन्निरून्नी काया मुवर्न्नुमी*

रंग दो प्रभुजी जीवन अपने ही रंग में (2)
ऐश्वर्य धर्म यश शोभा ज्ञान वैराग्य दो संग में॥
॥रंग दो प्रभुजी॥

सौभाग्य जीवन का जागेगा तब ही, ये षट् सम्पत्ति दे दो (2)
चाहता हूँ मैं प्रभु जी नियमों में निशदिन चलते हुए मुझे देखो
उत्तम विचारों, सत्य व्यवहारों से जीवन बहा दो तव तरंग में॥
॥रंग दो प्रभु जी॥

अपने विचारों को उत्कृष्ट करने, करता तुम्हारी ही स्तुतियाँ (2)
क्योंकि मैं पाना चाहता हूँ मधवन्, तेरे गुणों की ही निधियाँ
तेरी उपासना प्रेम अराधना, भरो मन हृदय अङ्ग अङ्ग में॥
॥रंग दो प्रभु जी॥

ज्योति जगाने जब सूर्य किरणें उषाकाल सजाती हैं (2)
मेरे हृदय में भी किरणें उपासना की आ आ के मन को जगाती हैं
अग्नि होत्र में अग्नि के जैसी फैले उपासना दिग्दिगन्त में॥
॥रंग दो प्रभु जी॥

उषा काल में सूर्य की किरणें चित्त में लाती हैं सात्विक स्वभाव
जागती हैं प्रभु प्रेम की आभा मानसिक मनोभावों का बहाव
अग्निहोत्र सन्ध्या से भक्तिभाव भजनों से कर लूँ उपासना आनन्द में॥
॥रंग दो प्रभु जी॥

90. प्रभु दर्शन

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु॥

यजु. 32/8

तर्जः ***कन्ना कार्मुगिल वरना, मिन्नुम तामर कन्ना!***

ब्रह्मा जगत नियन्ता
ब्रह्माण्ड धारण कर्ता (2)
प्राकृतिक बीज से, करे सृष्टि उत्पन्न
प्रजाओं का भी करता पालन

ब्रह्मा...

सृष्टि उत्पन्न से प्रलय तक, उसमें ही वो समा जाए
जैसे जाला मकड़ियाँ भी तो बाहर अन्दर ले जाये
बीज से उत्पन्न जैसे औषधि, वैसे प्रकृति से, उत्पन्न सृष्टि
प्रकट करता है आत्मा ज्योंकि केश रोमों की उत्पत्ति॥

ब्रह्मा...

गमप, नीप मग रे ऽऽ गमपनी सारेसानी पमगरे,
सानी सानी पऽऽनी, सानी सानी पनी सागरे, पनी सारेगमपरेसाऽऽ

विभु परमात्मन् हृदय गुहा में, गुह्य होके समाये
जो है प्रज्ञावान ध्यानी, लालसा मन में जगाये
शुद्ध अर्चनाशील मन से, श्रद्धा भक्ति बहाये
श्रवणशील व चिन्तनशील ही प्रभु के दर्शन पाये॥

ब्रह्मा...

वृक्ष पर बैठा है पंछी समझे आश्रय घोंसला है
घोंसला आश्रित वृक्ष पर है, वृक्ष धरती पे पला है
महल-मकान या सखा कुटुम्बी, आश्रय स्थान नहीं कभी भी
आश्रय स्थान है प्रभु ही विश्व के, दृष्य अदृष्य में है प्रतीति

ब्रह्मा...

संग-सहाय या छत्रछाया, हाथ साथ की अद्भुत माया
उसका आश्वासन हटे तो,एक पग चलना ना आया

उसके बिन इक साँस दूभर, धनी बली, उसे जीत ना पाये
दिव्य भवन अट्टालिकायें, क्षण भर में धराशायी हो जायें॥
ब्रह्मा...

वाह! प्रभु की लीला अद्भुत, उत्तरदायित्व व सुधबुध
ओतप्रोत है निज प्रजा में, विधियों और विधानों में खुद
आओ हम सब 'वेन' बनकर, प्रभु के चरणों में नमन करें
प्यास दर्शन की जगाकर, आत्मा मन को उजागर करें॥

(विभु) जो सर्वव्यापक हो (गुह्य) छुपा हुआ (वेन) मेधावी, इच्छुक गतिमय, अर्चनाशील, श्रवणचिन्ताशील मनुष्य

91. पूर्णिमा

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः। इन्दो रुचाभि गाः इहि॥

ऋ. 9. 64. 13 साम. 505. 841

तर्जः *कन्ना, निन्नि कुरिच्चुम न्यान पाडुम बो*

ऐमन! ज्ञान बहुत थोड़ा है तेरा
कितना तू है ज्ञानापन्न
ज्ञानी नहीं तू पात्र है ज्ञान का, ऐमन!
तुझमें प्रकाश है, पर है बहुत कम (2)
सूर्य नहीं है तू है शशि सम
ना है प्रकाश तेरे खुद का जनन
आजा प्रकाशक के सम्मुख स्वयं॥
॥ऐ मन! ऐ मन!॥

संगति कर ले मनीषी-जन की
मार्जित कर देंगे तुझको
पाप-ताप दोष आत्मा से हर के (2)
देंगे जगा तेरी सुध बुध को (2)
मनन शक्ति तेरी कर देंगे शुद्ध
धार प्रज्ञा की तुझको देगी प्रमुद
॥ऐ मन! ऐ मन॥

इक दिन की नहीं होगी प्रक्रिया
ये तो निरन्तर चलती रहे
गुरुजन-सेवा शुश्रूषा अविरल (2)
—धारा निरन्तर बहती रहे (2)
लहलहा के उठती ज्ञान की खेती
बरसे बरखा बाहुल छमाछम॥

॥ऐ मन! ऐ मन॥

नित्य मनीषियों के सत्संग से
हो जाती है प्रकाशित प्रज्ञा
द्वितीया चाँद से पूर्णिमा तक (2)
उन्नत होती है ज्योति-कला (2)
इन सूर्यों का संग पायेगा
पूर्णिमा जैसी होगी प्रज्ञा

॥ऐ मन ऐ मन॥

स्वच्छ करती है जैसे गौ बछड़े को
वैसे करेंगे तुझको मनीषिन्
महामनीषी हैं प्रज्ञ परमेश्वर (2)
उसके सम्मुख हो जा आसीन (2)
उसकी कला से हो जा कलावान
ज्ञान-प्रज्ञा का वो है भानु स्वयं

(ज्ञानापन्न) ज्ञान प्राप्त (जनन) पैदा किया (मनीषी) बुद्धिमान (मार्जिन) शुद्ध किया (ज्ञानापन्न) ज्ञान प्राप्त (जनन) पैदा किया (अविरल) बँधा हुआ (मार्जित) शुद्ध किया हुआ (सुधबुध) चेतना (प्रज्ञा) तीक्ष्ण बुद्धि (प्रमुद) अत्यंत आनन्द (बाहुल) अत्यधिक, बहुतायत

92. चराचर का ज्ञाता

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः॥

ऋ. 1. 25. 7

वेदमासो धृतव्रतो, द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥

ऋ1. 25. 8

वेद वातस्य वर्त्तनिम् उरोर्ऋष्वस्य बृहतः वेदा ये अध्यासते॥

ऋ. 1. 25. 9

तर्जः *कन्निनू निन्नी कन्मणी कादिन्नू*

हे वरणीय महाप्रभु वरुण, अनन्त महाज्ञानी हो तुम
तुम से ना कोई बात छिपी, सर्वत्र सत्ता रही तेरी
तुझसे ना कोई क्षण ओझल, सबको रहती तेरी धुन॥
॥हे वरणीय महाप्रभु॥
गति जाने उड़ते पंछियों की, गृहस्थियों की यात्रियों की
संवत्सर और बारह महीनों की पलपल के व्रत-सवनों की
कुछ ना आँखों से है ओझल, पारदर्शक है तेरी दृष्टि
देखो तो कितना, वायु अदृष्ट है, जिसमें है गतिशीलता बल भी
'सदागति' वायु को भी वो जानें, रूद्र भी वही हैं वही करुण॥
॥हे वरणीय महाप्रभु॥
हर जड़ चेतन पदार्थ-अवस्था, हस्तामलकवत जाना करता
ऐसे सर्वज्ञ सर्वांष गाही सामर्थ्यवान से कोई नहीं बचा
भले बुरे सब काज हमारे किये जो पल पल जाने वो सारे
'धृतव्रत' स्वामी के व्रत नियमों को, तोड़ते हैं जो बिना विचारे
सुखी कभी वो रह नहीं सकते, धृतव्रत स्वामी को मानो तुम॥
धिक ताना धिम् ताना (3) ता ना ना... हे वरणीय...
॥हे वरणीय महाप्रभु॥

(धृतव्रत) सब नियमों का धारण कर्ता (परमेश्वर)

93. नाथ! सब बन्धन काट दो

उदु॒त्त॒मं मु॑मुग्धि नो॒ वि पाशं॑ मध्य॒मं चृ॑त। अवा॑ध॒मानि॑ जी॒वसे॑॥

ऋ. 1. 25. 21

तर्जः *कन्नोड़म, कन्नोरम, नोकीरून्नालुम काणा मरयत्त कुटती चालुम*

कमजोर हो गए हम इस जग के बन्धन से (2)
जीवन का क्रम हुआ अनमन
रज्जुएँ अज्ञान और पाप की सर्वत्र (2)
बाँध रही है निज जीवन॥ कमजोर...

जीवन विकास में बन्धन का काम क्या
जीवन-प्रभा चाहे ना दासता (2)
स्वतन्त्र भावनाएँ, अबद्ध कामनाएँ
शुद्ध विचारों की चिर चाहनाएँ
प्रशस्त करती हैं जीवन का ध्येय
पाप-मलीनता से दूर होता मन॥ कमजोर...

मस्तिष्क में शुद्ध ज्ञान विचारों का
करती है मनीषा प्रतिनिधित्व
मध्य भाग में भव्य भावना
उपजाता है सुहृदय नित्य
और क्रियाशीलता के लिए हैं पग
करते यही स्वतन्त्र, अन्यथा बन्धन कमजोर...

हमको अजीवन से बाहर करो प्रभु
काटो तीनों बन्धनों के दुःख
पवित स्वतंत्र हो कर्म-भावना
तुम हो सुखद हमें दे दो सुख
कौन है तुझसा बन्धन-मोचक?
बन्धन कटें तो होवे तव दर्शन॥ कमज़ोर...

(अनमन) खिन्न, उदास (दासता) गुलामी (मनीषा) बुद्धि (मोचक) छुड़ाने वाला (अन्यथा) विपरीत

94. भेंट का अभाव

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते॥

साम. 573. ऋ. 9. 103. 1

तर्जः *काचिल वरुम गीत में*

भक्ति भरे भाव ने रंग तेरा ही रंगवाया
मूक हूँ फिर भी तेरी तान को सुन पाया॥
॥भक्ति भरे॥

मैं गुमसुम, प्रभु रहा तुझे सुन
रोम रोम हुआ मेरा प्रसन्न
बागडोर मेरी, तूने सम्भाली (3)
और मगन हुआ सुन तेरी धुन॥ ॥भक्ति भरे॥

आधार श्रुतियों का, ऐसा मिला
अङ्ग अङ्ग पुलकित प्रेम खिला
बह गई गंगा, भक्ति भाव की (2)
बिन छबि छैल छबीले को सुन॥ ॥भक्ति भरे॥

भावना स्तुतिरूप मनमें उठी
हुए निहाल ईश-कृपा बरसी
देख प्रभु को हृदयासन पे (3)
हुआ अचानक हर्ष में गुमसुम ॥भक्ति भरे॥

तू है विधाता मैं हूँ विधान
तू दानी तुझे क्या दूँ दान?
हो गया तुझमें आत्म समर्पित
भेंट यही अर्पित है हृद हुन॥

प म रे ग रेग रेग नी ध ध नी (2), रे नी रेग रेग मग मध
मध नी सां नी नी सां नी रे सा, सां सां नी रे सानी धनी,
नी नी धसां नी ध मध, सां सां नी रे सां नी धनी, नी धसां
नी ध म ध ध, नी ऽ, म ध गग, म धसां नी ग मगरे॥

(मूक) गूँगा (बागडोर) लगाम (छैल छबीला) सुसज्जित युवा (विधान) व्यवस्था, स्थिती, रचना (श्रुति) वेदकथन (हृद हुन) स्वर्ण हृदय

95. श्रेष्ठ कर्मों का प्रेरक परमात्मा

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने॥

ऋ. 6. 16. 1

तर्जः ***काटेनी वीशरनिप्पो तारेनी पेयर***

दई दई दई दई दई दारो ऽ इर्द दई दई दई दई दारो, दई दई
दई दई दई दई दई दई दई दई दई दई दई दो (2)
हे पूषन्! पोषक देव! तुम तो हो आघृणि,
सुखकर्ता हे परमेश्वर, बस जा हृदय के भीतर
उत्तम कर्मों की पायें हम तुझसे प्रेरणा
तेरी कृपा दया में होती कभी ना देरी
हम सब सुखी हों मन में हैं एषणा॥ सुखकर्ता...
1. तेरी अनुकम्पा तेरी प्रेरणायें सदा ही बरसे
हम सबके उत्तम कर्म तुम ही तो पूर्ण करते
तुम ही प्रभु हितकर्ता हो उपकार सब पे करते
करते हो कुमार्ग तिरस्कृत सत्कर्मों का देते अवसर॥
सुखकर्ता...
2. अग्निपथ प्रभु हमारे अंतःकरण के द्वारे आओ
अपने गुण कर्म स्वभाव से आत्मा हमारी जगाओ
मनन चिन्तन निदिध्यासन से समुन्नत हमें बनाओ
अनुरक्ति अपनी बढ़ाओ हमें बनाओ याज्ञिक अनवर॥
सुखकर्ता...
3. जैसे हो तुम हितकारक और जैसे हो उपकारक
अपने सदृश हमें भी सत्कर्मों का बनाओ धारक
तुम हो आशुतोष हमारे सहज मित्र हो सबसे प्यारे
साक्षात तुम्हारा दर्शन लक्ष्य हमारा है श्रेयस्कर॥
सुखकर्ता...

(आधृणि) दीप्तिमान (अनुकम्पा) कृपा (अनुरक्ति) प्रेम (अनवर) श्रेष्ठ (आशुतोष) शीघ्र पिघलने वाला, दया करने वाले (श्रेयस्कर) मङ्गलकारी

96. वाणी के सलिल में स्नान

ऋतेन॑ गु॒प्त ऋ॒तुभि॑श्च॒ सर्वै॑र्भूतेन॑ गु॑प्तो भव्येन॑ चा॒हम् ।
मा मा॒ प्राप॑त्पा॒प्मा मोत मृ॒त्युर॒न्तर्द॑धे॒हं स॑लि॒लेन॑ वा॒चः॥

अथ. 17. 1. 29

तर्जः *काठा वरती हात फिरतते*

पवित्र ज्ञान-सलिल की बहती श्रावण धारा (2)
वेदवाणी के ज्ञानामृत की पावन धारा॥
॥पवित ज्ञान॥

प्रचूर सैनिक चहुँ दिसी कर लें सन्नद्ध फिर भी (2)
नैतिक नियम ही कर सकते हैं (2) उपराला॥
॥पवित ज्ञान॥

सर्वप्रथम तुम सत्य धारण कर रक्षित हो लो (2)
सत्यभाषी तो सरल मृदु बनें (2) आँख का तारा॥
॥पवित ज्ञान॥

षट् ऋतु जैसे कार्य कलाप में लाती चारुता (2)
उसी तरह हम यथा समय करें (2) काम हमारा॥
॥पवित ज्ञान॥

राष्ट्रव्यापी उज्जवल अतीत की यदि लें शिक्षा (2)
वर्तमान का व्रत भी रक्षक (2) बने अन्यारा॥
॥पवित ज्ञान॥

उज्जवल भव्य की यदि कल्पना जागे मन में (2)
वर्तमान साकार करें, मिले (2) भव्य किनारा।
॥पवित ज्ञान॥

पाप-विलय हो दृढ़ता यदि हम धारण कर लें (2)
वेदामृत पवि ज्ञान-सलिल प्रभु (2) पियें तुम्हारा॥
॥पवित ज्ञान॥

निर्मल ज्ञान सरोवर में जो लगायें डुबकी (2)
दुःख द्वन्द्व भीतीयाँ भागें, हरता (2) जो अन्धियारा॥
॥पवित ज्ञान॥

(सलिल) जल (प्रचूर) अत्यधिक (सन्नद्ध) तैयार, व्यवस्थित (चारुता) सुन्दरता मनोहरता (अन्यारा) अनूठा, (विलक्षण) विचित्र, (विलय) अन्त, विनाश (भीति) डर, भय (द्वन्द्व) लड़ाई

97. अविनाश का उपाय

स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः। सोमो हिनोति मर्त्यम्॥

ऋ. 1. 18. 4

तर्जः *काड कुडन्दिम मेडाम केताम*

जगत की बीहड़ पगडंडी पर, हो निज वीरता का विश्वास (2)
और शत्रुओं के आगम पे, छोड़ भीरुता करें आघात॥
जगत की...

ऐसा ना हो समय आये तो दृढ़ विश्वास असिद्ध हो
हृदय वेदना लिये चिल्लाओ, दुःख से क्षत विक्षत हो,
अरे! मैं तो गया मारा ऐसा न हो झींखन
लुट गया लुट गया हुआ क्षोभ कितना अतिशयी (2)
जगत की...

तनिक भी हो अपने पर भ्रम तो, कृष्ट से बचना दुष्कर
क्षतिग्रस्त कर देगें शत्रु समय रहेगा दुःखकर
कान खोल दो, सुनो उपाय, गुप्त शब्द वेदोत्तम
अविनाश अविनाश शब्द यही है प्रतिभाशाली (2)
जगत की...

आत्मिक भौतिक या वैयक्तिक जीवन सकल हों अविनाशी
धर्म चरित्र राष्ट्र सम्पत्ति में हो दैविक परिप्राप्ति
कभी शत्रु ना करें आगमन पग पग ना हो त्राही
देवो देवो! हम बन जायें तव अनुयायी (2)
जगत की...

इन्द्र सोम ब्रह्मणस्पति ही मर्त्य को अमर्त्य बनाते
रिपु-प्रहार से हमें बचाते, भय संकट से छुड़ाते
आदर्शों में बने सहायक, सत्योपदेश सुनाते
ऐ मन! ऐ मन! जान ले तू देवों की प्रणाली (2)
जगत की...

धनी इन्द्र में शौर्य है स्थिरता, रिपु विदारक क्षमता
ब्रह्मणस्पति में ज्ञान महत्ता गुण है ब्रह्मवर्चस का,

शान्त सोम में है रसमयता समस्वरता अतिसर्जन
हे सोम हे सोम! सत्य-प्रेरणा के अभिसारी (2)
जगत की...

तीनों देवों की त्रिशक्ति देती अनुपम तृप्ति
सम्मुन्नति में या वृद्धि में मिलती प्रेरणा शक्ति
सब रिपुओं के दमन से होवे जीवन का उत्सर्पण
हे त्रिदेव हे त्रिदेव! हमें बना दो बलशाली (2)
जगती की...

(बीहड़) विषम, ऊँचा नीचा, विकट (भीरू) कायर, डरपोक (क्षतविक्षत) बुरी तरह घायल (अतिशायी) अधिक, प्रचूर (दृष्ट) देखा हुआ (अनुयायी) पीछे चलने वाला (झींखन) दुःखी होकर पछताना (अनुयायी) अनुकरण करने वाला (अति सर्जन) अधिक दान (दुष्कर) जिसे करना कठिन हो (कृष्ट) आकर्षित (मर्त्य) मरणधर्मा (अमर्त्य) अमर (रिपु) शत्रु (विदारक) फाड़ डालनेवाला (ब्रह्मवर्चस) वह शक्ति जिसको ब्राह्मण तप से प्राप्त करता है (उत्सर्पण) त्याग, उर्ध्वगमन (ब्रह्मणस्पति) ज्ञान महत्ता विशालता वृद्धि ब्रह्मवर्चस आदि का प्रतिनिधित्व करने वाला। (अभिसारी) सहायक

98. पाप-दुःख हर्ता सुखकर्ता परमेश्वर

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व॥

ऋ. 5. 82. 8, यजु. 30/3

तर्जः *काडुम्बो परयामोय करहिने अनुरागम*

हे प्रभुवर! हे सुखकर! प्रार्थना करते हैं प्रार्थी
बन जाएँ परमार्थी (2)
तुम हो गुणोध भगवन्
हरते सब दुःख ओर तम
गुण कर्म स्वभाव
हों देवयात भाव
हो जाएँ हम पुरुषार्थी ओ ऽ ऽ ऽ

हे प्रभुवर!...

श्रेष्ठ कर्म से है सार्थक जीवन दृढ़ मन हो, श्रेष्ठता हो
हृदय-मन संग संग चलें संग श्रेष्ठ प्रार्थना हो
हरें दुर्गुण दुःख पीड़ा ना गँवायें जन्म हीरा
असतो मा सदगमय' के मन्त्र से त्यागें भाव अराति॥

हे प्रभुवर!...

काम क्रोध से क्यूँ मन आवृत अवगुण तो यही है तमो
क्रोध जागे प्रतिकार माँगे जब कामना पूर्ण ना हो
ढक लेते ज्ञान को जो मन कहता वैर करो
ज्ञानेन्द्रियाँ दुर्मन के वश होकर, हो जातीं अत्याचारी

हे प्रभुवर!...

दिव्य गुणों से हों आपूरित, जागृत बल-बुद्धि करो
वार करे जब पञ्च शत्रु, महाअस्त्र से मार करो
सद्गुणों की दो शिक्षा, दुर्गुणों की हो अनिच्छा
हे जग के स्वामी अन्तर्यामी, बन जाएँ ना कभी स्वार्थी

हे प्रभुवर...

(गुणोध) गुणों का समूह (देवयात) देवों द्वारा प्राप्त (आवृत) भरा (अराति) अदान भाव, स्वार्थ

99. प्रकाशमय त्रिलोकधारी

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यजु. 13/4
ऋ. 10.121.1

तर्जः *काडुम्बो परयामोय...*

हे प्रभुवर! हे जगकर! तुम ही हो सर्वव्यापी
हो त्रिलोकधारी
ज्योतिस्वरूप भगवन्
रवि-चन्द्र किए उत्पन्न
सबके रक्षक शक्ति वर्धक
एकमात्र जग के स्वामी

प्रभु तुम हो हिरण्यगर्भ, फैला रहे हो निज प्रकाश
यश ज्योति अमृतादि में, है हिरण्य रूप विभास
सब ज्ञान विज्ञान पदार्थ के आदि मूल हो नाथ।
सृष्टि से पूर्व भी थे विद्यमान सब सृष्टियों के हो स्वामी
हे प्रभुवर....
पालक रक्षक सबके आश्रयदाता, सुख स्वरूप हो सबके पूज्य
तुम बिन, ना कोई दूजा, स्तुति प्रार्थना उपासना योग्य
हे सच्चिदानन्द प्राणन्! हों योगाभ्यासी हम
श्रद्धा और प्रेम की भेंट चढ़ाकर, पायें आनन्द हे अभिरामी।
हे प्रभुवर!...

(हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाश स्वरूप और सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थों के उत्पादक एवं धारक (अभिरामी) आनन्द दायक (जगकर) जगत उत्पन्न करने वाला (विभास) चमक

100. हे आत्मा के बलदाता

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋ. 10.121.2, यजु. 25/13

तर्जः *काडुम्बो परयामोय...*

हे भगवन्! हे आत्मन्!
आत्मज्ञान के दानी
आत्म-बलद हो स्वामी
कल्याण के हेतु स्वयं
किया सृष्टि को धारण
आत्मा-शरीर व समाज के बल के
प्रापक हुए तुझसे प्राणी॥

हे भगवान्...

आत्मज्ञान है सर्वोपरि इसे लोग करें विस्मरण
आत्मलोक से है पृथक आत्मा आत्मा तो रहती स्वच्छंद
आत्मज्ञानी भक्तों का, अग्रणी हैं परम पिता
अनुकरण प्रभु का करते हुए, बन जाते हैं हम आत्म-ज्ञानी॥

हे भगवन्...

अपने जीवों को परमात्मा देता आत्मशक्ति और सामर्थ्य
आत्मशक्ति पाके उसके भक्त पाते रहते उत्कर्ष
करकर के प्रार्थना स्तुति के संग उपासना
ज्ञान कर्म उपासना की त्रिवेणी में स्नात करो हमको स्वामी

हे भगवन्!...

प्रभु आज्ञा का श्रेष्ठ पालन करते हैं ज्ञानी लोग
सत्यव्रती होते सत्याचारी पाते हैं ज्ञान बल ओज
प्रभु का शासन है प्रकष्ट इसमें पापी हुए नष्ट
जो सत्य के पथ से होते ना विचलित कहलाते हैं वो तपसाली

हे भगवन...

तेरी छाया प्रभु अमृतमयी, अमृत रस पीते गुणी
सच्चे आर्य सुधी ज्ञानी साधक के प्रेरक हो तुम ही
पापी नज़रों से गिरा, रहता दुःख भय से घिरा
पाता तुझसे सुख शान्ति आनन्द वही साधक जो है ऋतगामी॥
हे भगवन्!...

(प्रापक) पाने वाला (स्नात) नहाया हुआ (तपसाली) तपस्वी (ऋतगामी) नियम पर चलनेवाला

101. सर्व प्राणों के प्राण परमात्मन्

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
ऋ. 10.121.3, यजु. 23/3

तर्जः *काडुम्बो परयामोय...*

हे प्रभुवर! हे हितकर! हो संसार के स्वामी।
और अन्तर्यामी!
जग का पालन रक्षण, हो चाहे जड़ जङ्गम
पशु पक्षी जन्तु जीव मनुज को
देते हो तुम दाना पानी॥
हे प्रभुवर!...

सूर्य चन्द्र और तारागण को देते हो तुम निज ओज
सागर पर्वत वन नदी झरने, करते कल्याण ही रोज़
पर आज का मद-मानव, क्यों बन रहा दुष्ट दानव
रहा धर्म-कर्म से दूर बिना समझे करता है मनमानी॥
हे प्रभुवर!...

तुम हो इन्द्र संसार के सबके हृदयों में बसे
भटके भाईयों को चेताते जो मलिन मार्ग में फँसे
काम क्रोध लोभ व मोह करें ईर्ष्या और विद्रोह
चाहे वो करें धोखा सबसे, पर कर सकें तुमसे मनमानी
हे प्रभुवर!...

पशु-पक्षी भी मस्त होकर उड़ते फिरते हैं रोज़
क्या वो अक्सर कभी होते रोगी, कभी होते तो त्यागते भोग

दया करता है उनपे ईशत्व, पशु-पक्षी का अपना महत्व
हो गया क्यो मानव पशुओं से बदतर और बनता जा रहा है पामी॥

हे प्रभुवर!...

जो भी आत्मा-परमात्मा का, करते नहीं नित चिन्तन
ना तो मानव ना तो देव योनी में आता है आत्मन्
इसलिये ऐ मानव जाग, चल नियम से छोड़ प्रमाद
'नहि चेद वेदी दथ महती विनष्टि', उपनिषदीय है ऋषि-वाणी॥

हे प्रभुवर!...

सुख स्वरूप आनन्द स्वरूप उस ईश का करें पूजन,
जिसमें सारे प्यारे याज्ञिक मिलकर, करें प्रेम से संध्या-हवन
जो भी मिला है प्रभु से दान, उसमें से करें प्रतिदान
ब्रह्मज्ञान की विततमहत्ता में रहे लीन सदा ही ब्रह्मज्ञानी॥

हे प्रभुवर!...

102. तेजोमय अन्तरिक्ष

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विभानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

10. 127. 5 यजु. 32/6

तर्जः *काडुम्बो परयामोय...*

ज्योतिर्मय परमेश्वर! स्वयं प्रकाशित स्वामी
जगत तेरा अनुगामी
रवि-शशि तारे अविश्राम
करें तेरे आदेश से काम
तूने अपने तेज किये उन्हें भेंट
गा रहे मीठी रागिनी॥

ज्योतिर्मय...

भौतिकवादी तो ना माने, ईश्वर-सत्ता की बात
अक्ल के अन्धे कहने लगे, सृष्टि बनी अपने आप

हँसना है तो उनपे हँसो, पर असत्य में कभी ना फँसो
सृष्टि रचना उसकी अनन्त है ना कोई उसका सानी॥
ज्योतिर्मय...

करे धारण सारे प्राणियों को इसलिये है सह, धरणी,
सचमुच ये है दृढ़ इतनी सहनशीलता की ना कमी
कई आये सिकन्दर यहाँ उन सबका मिटा निशां
पर ये पृथ्वी सदा पालन करती, आते जाते इसपे प्राणी॥
ज्योतिर्मय...

जहाँ ईश्वर करे सुख धारण, करे धारण दुःखरहित मोक्ष
प्रजा यदि प्रकृति में रमे, उन्हें घेरता भोग व रोग
यदि परमात्मा की ओर, पायेगा जीव निज ठौर
वैराग्य प्राप्ति आनन्द शान्ति से हो जाएगा मोक्ष धामी॥
ज्योतिर्मय...

सूर्यचन्द्र दोनों हित कारक इक अग्नि है दूजा सोम
दोनों शिशु खेलते हैं नभ में ये खेल खिलाता ओइम्
पृथ्वी से इनकी दूरी, जीवन के लिये है पूरी
गतिमान है इसका वितत प्रकाश ये सबको बनाये बलशाली॥
ज्योतिर्मय...

सच्चिदानन्द के अभिलाषी तो पाते मोक्ष का सुख
परमेश्वर की उपासना में हो दिन प्रतिदिन आहुत
है मार्ग प्रदर्शक वो आनन्द का वर्षक वो
दुःख रहित अमर पद का वो दाता प्रभु है ज्योतिर्मय दानी...

(सह) सहनशील (धरणी) पृथ्वी।

103. अद्भुत प्रजापति परमेश्वर

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

ऋग्. 10. 121. 10

तर्जः *काडुम्बो परयामोय...*

सकल ब्रह्माण्ड के प्रजापति
एक मात्र सबके स्वामी
तुमसा ना कोई दानी
पशुपक्षी कीट पतंग और मानव के रहो संग
पालन पोषण रक्षण कर्ता
तू है अग्रणी हम अनुगामी सकल ब्रह्माण्ड...
जड़वस्तु और चेतन प्राणी, हैं सब तेरे आधीन
जीव अच्छे बुरे कर्म करता, फलदाता है तू प्रवीण
दयावान है प्रजापति! प्रजापालन नित तू करे
चींटी से हाथी पञ्च जन्यों तक देता है तू दाना-पानी॥
सकल ब्रह्माण्ड...
तुझसे भिन्न, ना कोई दूजा, ब्रह्माण्ड का जो रखे ध्यान
पूर्ण ज्ञानी है सुधी स्वामी नियमों का कर्ता महान
चाहे मातपिता नाती सांसारिक जन स्वार्थी
शमशान तलक ही साथ है उनका, हर वक्त केवल प्रभु साथी॥
सकल ब्रह्माण्ड...
अन्तर्यामी प्रभु सबके स्वामी विश्वास है तुझपे पूरण
कामनाएँ सबकी पूर्ण करता, सब आते हैं तेरी शरण
विद्वान देव सबने, विश्वास रखा तुम पे
आदि सृष्टि से सृष्टि प्रलय तक तेरा विश्वास करते प्राणी॥
सकल ब्रह्माण्ड...
धनवर्षक इन्द्र प्रजापति तेरे 'वाज' का धन बल दे
ज्ञान-विज्ञान बुद्धि बल आचार और मोक्षरूप धन दे
हितकारक धन ऐश्वर्य, पायें तुझसे रख के धैर्य
करूँ विशेष अपनी आत्मिक भक्ति, प्रेरणा दे अन्तर्यामी॥

104. सच्चा बन्धु व सखा

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥10॥

यजु. 32/10

तर्जः *काडुम्बो परयामोय...*

हे प्रेरक! हे बन्धु! हे अन्तर्यामी!
सबके बाँधव स्वामी!
आत्मा को बाँधते हो शुभकर्मी देह में तुम
इसलिये हो बन्धु करुणा सिन्धु,
तुझसे बँधे हैं सब प्राणी॥
हे प्रेरक...

जगत के उत्पादक तुम हो, देते आत्मा को शरीर
दीन हीन कंगाल पुत्रों की हर लेते हो पीर
पुत्र प्रार्थना करें धन की प्रभु जानते बात मन की
पाते हैं दान आस्तिक-नास्तिक, हो ज्ञानी या हो अज्ञानी
हे प्रेरक...
चर अचर जगत के पिता, कहो तुम से बढ़कर कौन?
बिन जताये तू भरता झोली,अगणित हाथों से, मौन?
तू ही मात-पिता बन्धु सुख-सखा करुणा सिन्धु
हे आनन्द सागर परमेश्वर दे पूर्ण आनन्द और सुख शान्ति
हे प्रेरक...
कर्मफल का विधाता तू ही, करता नहीं क्षमा, अपराध
है प्रकष्ट तेरे नियम शासन, करता नहीं कभी पक्षपात
है तेरे सिद्धान्त अटल कर्मानुसार देवे फल
कहीं घटा-बढ़ी ना, कर्म फलों की, पलपल रखता निगरानी
हे प्रेरक...
लोकलोकान्तर नाम स्थान, जन्मों को तू ही जाने
सृष्टि सूर्य किये कैसे उत्पन्न, सब भेद तू ही जाने

विद्वान भी क्या जाने तेरी अनन्त महिमा को
कोई पार नहीं पा सकता प्रभु का, कारण है कि हम अल्प ज्ञानी
हे प्रेरक...

प्रकृति में जिसकी केवल रुची बन्धन से ना पाये छूट
तामस स्थिति में है उलझी मति, भोगों की ना मिटती भूख
निस्तार के जिसके कर्म उसे ईश ही देते सुपर्ण
सच्चिदानन्द का आनन्द धाम ही स्थान है आत्मिक परिणामी॥
हे प्रेरक...

105. हे परमात्मा हमें सुपथ पर ले चलो

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥16॥

ऋ. 1.189. 1. यजु. 40/16

तर्जः *काडुम्बो परयामाय...*

हे अग्रणी! परम ज्ञानी! पाथ प्रदर्शक स्वामी
हम तेरे अनुगामी
ना हो कुटिलता युक्त करम ना पाप हों ना हो तम
करो ऐसी कृपा करे पुण्य सदा
सुनो विनीत स्तुतिमय वाणी॥
हे अग्रणी!...

काम क्रोध मद लोभ मोह जीवन के बने अवरोध
ऊँची ऊँची इनकी तरंगे अक्सर करतीं विद्रोह
महाअस्त्र से प्रभु इनको मारो हमें विजयी करो
सत्य पथ पर चलाओ आत्म-रथ, शुद्ध करो मन-चित्त वाणी॥
हे अग्रणी!...

धर्म अर्थ काम मोक्ष प्राप्ति हो सदा जीवन का लक्ष्य
चतुर्फल को पाने की राहें दिखला देना प्रभु स्पष्ट
पारलौकिक मोक्ष का सुख माने सदा इसे प्रमुख
जहाँ आनन्द ही आनन्द में विचरें, ऐसा बना दो अभिरामी॥
हे अग्रणी!...

सर्व दृष्टा सर्वव्यापक प्रभु तुम ही हो सर्व नियन्ता
कर्म करते वक्त ध्यान रखें ईश्वर प्रदत्त नियमों का

तम पाप दुरित हर लो, निश्चिन्त हमें कर दो
जीवन में संयम धैर्य सरलता लाके बने हम आत्मज्ञानी॥
हे अग्रणी!...

जगत की हर एक वस्तु पाई है प्रभु आप से
तेरी दीनी हर वस्तु को हम बचायें प्रभु पाप से
तेरा दिया हुआ वसुधन, तुझे कैसे करें अर्पण?
दे सकें केवल तुझे निज आत्मा, सुनो विनय भरी मृदुवाणी
हे अग्रणी!...

106. स्वराज्य की अर्चना

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम्॥

ऋ. 1. 80. 15

तर्जः *कादला कादला कादला*

साधना साधना, साधना है कठिन
साधना करें अपने स्वराज्य की
शक्तियाँ शक्तियाँ, शक्तियाँ इन्द्र की
शक्तियाँ मिल जायें इस आराध्य की॥

॥साधना॥

शक्ति वैदेशिक हैं, दुष्कर है हटाना
दुर्लभ है इनकी रक्षा कराना, हो ऽ ऽ
उत्कृष्ट नेता वैसा ही नेतृत्व
इन्द्र जागृत करे सत्य
दृढ़ता जो आये कोई क्यों सताये
अग्रणी हैं इन्द्र, करे जो वो चाहे
इन्द्र से बली भला कौन? हो ऽ ऽ ऽ

॥साधना॥

पराधीन देश, विदेशियों से शासित
करे सम्पत्ति का अपहरण हो ऽ ऽ ऽ
दासता असह्य होती, उठती है जागृति

करे प्रजा, नेता का चयन, हो ऽ ऽ ऽ
इन्द्र में हैं द्युति, इन्द्रियाँ अछूति
होती हैं नेतृत्व की अभिव्यक्ति
इन्द्र से बली भला कौन? हो ऽ ऽ!!
साधना॥

इन्द्र आत्मा का भी है अध्यात्म-राष्ट्र
वृत्र शक्तियों की पड़े गाज हो ऽ ऽ
मन बुद्धि प्राण, इन्द्रियों का करे पतन
हो जाये आत्मा हताश हो ऽ ऽ
अब तो ये आत्मा बना है बेजोड़
स्वराज्य की थामी इसने है डोर
इन्द्र से बली भला कौन?
॥साधना॥

आओ आत्मा को नेता बनायें
अंतस् शक्तियाँ भी बढ़ें,
बल ओज प्रज्ञान कर्म वीर्य पायें
पाशविक शक्तियाँ हरें, हो ऽ ऽ
स्वराज्य-विद्या वेद ही बतायें
अग्निरूप प्रभु तो पाप जलायें
इन्द्र से बली भला कौन?
॥साधना॥

(दुर्लभ) अति प्रशस्त (वैदेशिक) दूसरे देश का, देश देशांतर का (पाशविक) पशु सम्बन्धित

107. शुद्ध प्रभु की शुद्ध रक्षाएँ

इन्द्र॑ शु॒द्धो हि नो॑ र॒यिं शु॒द्धोः रत्ना॑नि दा॒शुषे॑।
शु॒द्धो वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे शुद्धो वाजं॑ सिषाससि॥

ऋ. 8. 95. 9

तर्जः ***कानन कुईलेनी कादिले डानुरुकातपवन पुरन्तु तराग्या***

पावन प्रभु जी रक्षक प्रभुजी, हमको शुद्ध बनाओ (2)
कल्याण कारक मधुर महारस आनन्ददायी पिलाओ
कर दो प्रभासित पवित तरंङ्गे अंतःकरण जगाओ (2)
पावन...

अपनी शुद्धता से मेरे आत्माको भी कर दो शुद्ध प्रबुद्ध
अपनी पवित्र रक्षाओं के संग आओ मन को करो अनवद्य
परधन की लालच नहीं, निज पुरुषार्थ का मान है
परधन तो हमारे हेतु मानों धूल समान है
ओ ऽ ऽ ऽ... संयम हमें सिखाओ!!
पावन...

पाप विदारक हे परमेश! पाप व शोषण से हों दूर
गाढ़े पसीने की ही कमाई चाहे कम हो पर हो अगूढ़, हो ऽऽ
पूजित धन हो सत्य हो और इसमें सन्तोष हो
सत्य न्याय ओर दान दया का इसमें अनुयोग हो
चिर सन्तोष सिखाओ॥
पावन...

(अनवद्य) दोष रहित (विदारक) फाड़ देने वाला (अगूढ़) स्पष्ट (अनुयोग) जिज्ञासा

108. मैं दास वह स्वामी

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति।

ऋ. 7. 86. 7

तर्जः *कानन कुईले कानेलो बानुरू काल्पके पुन्न तराम्या।*

प्रभु मुझे अपना बल दे देकर पाप से सतत् बचाओ
मैं हूँ अज्ञानी, ज्ञान मुझे देकर ज्ञान से कर्म कराओ
मेरे सारे पाप का मूल है अज्ञान इसे मिटाओ (2) ॥प्रभु॥
वस्तु स्थिति का ज्ञान भुलाकर करता था कर्मपाप के
अब तो प्रभुजी कृपा हो गई कुछ गुण मिल गए मुझे आप से
कुछ ऐसी शक्ति भर दी तुमने मन बुद्धि में
आत्मा सतर्क हो गया मन लगा शुद्धि में, ऐसे ही मुझे जगाओ॥ ॥प्रभु॥
अब मैं सारी वस्तु स्थिति की मार्मिकता को समझ गया हूँ
कब क्यों कैसे? करना आचरण, जान के अब मैं अनघ हुआ हूँ
अब मैं प्रभु की इस महती कृपा से
निष्पाप हो गया प्रभु की प्रभा से, कृपाएँ सदा बरसाओ ॥प्रभु॥
इसलिये अब मैं, मङ्गलकर्ता ईश की भक्ति प्रचूर करूँगा
अन्तिम-सीमा तक निजभक्ति श्रद्धापूर्वक मधुर करूँगा
सेवक जैसे स्वामी की, भक्ति करता निर्दोष
ऐसी प्यारी भक्ति का हो रहा है मुझको बोध, अपना दास बनाओ।॥प्रभु॥
पुण्य का जो ऐश्वर्य दिया है, उसमें प्रभु तेरा दर्श मिला
मेरे जागृत आत्मा को आनन्द रस और हर्ष मिला
इस वर्तमान में, निकट भविष्य में
बचता रहूँ मैं पाप और अनिष्ट से, सर्वत प्रेरणा जगाओ ॥प्रभु॥
'अर्य हो तुम प्रभु सबके हो स्वामी, सकल ब्रह्माण्ड है तेरे वश में
कवितर भी हो तुम ज्ञान के ज्ञाता, ऐसा ज्ञानी नहीं कोई जग में
ऐसा ही ज्ञानी स्वामी पाप से बचाता
वेदों का ज्ञान ध्यान भक्तों को कराता, धर्मात्मा हमें बनाओ ॥प्रभु॥

केवल भक्ति मैं न करूँ प्रभु, अन्यों को भी भक्ति में लगाऊँ
कहूँ न मैं ही भक्त तुम्हारा, हम सब भक्त हैं ये दर्शाऊँ
मण्डलियों में बैठकर करें तेरा कीर्तन
नाच उठे सबका मन, मन में जागे थिरकन, अनन्य भक्ति कराओ॥प्रभु॥

(अर्य) सबके स्वामी (कवितर) तलस्पर्शी, गहरा ज्ञान रखने वाले (अचितः) अनन्य भक्ति (अनघ) पाप रहित

109. सुख स्वरूप शक्ति

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे। पान्तमा पुरुस्पृहम्॥28॥

साम. 489. 1137. ऋ. 9. 65. .28

तर्जः ***कार्मुगी ले कार्मुगी ले कण्डो मी इन कार्वरनने***

आग गिरी रे आग गिरी रे
स्फूर्ति लेकर अङ्ग-अङ्ग में
हुई रे ओ हुई रे...
गति अणु अणु कण कण में

इस ब्रह्माण्ड की गति यूँ
पिण्ड में धारण कर रहा हूँ
आलिंगन मानो प्रीतम का है
मेरा ये जीवन प्रभु का है
कर रहे मुझे ब्रह्माण्ड का अंश (2)
॥हुई रे॥

सिन्धु तरंग, सूर्य किरण
इन सबका करे तू ही भरण
वाह्यमान करें मेरे करम को
पाऊँ तुम्हीं से तेरी शरण को
मेरी क्रिया-क्रियमाण में तुम (2)
॥हुई रे॥

नासिका मेरी श्वास में तुम
नयन है मेरे दृष्टि में तुम

कान है मेरे श्रवण में तुम हो
मेरी सभी अनुभूति में हो तुम
इन्द्रिय-ज्योतियाँ आत्मा में तुम (2)

॥हुई रे॥

सुख स्वरूप करूँ तुझे अनुभूत (2)
शक्ति तुम्हारी प्रथित-प्रभूत
शक्ति तुम्हारी है सुख-प्रतिमा
इस शक्ति में हम को है जीना
आश्रय तेरा करते ग्रहण (2)

॥हुई रे॥

आत्म समर्पण की वृत्ति ने,
आधि व्याधि से रक्षा की है (2)
शक्ति के दुर्ग में रक्षित होकर,
भय चिन्ता से मुक्ति ली है
शक्ति तुम्हारी शिव-सुन्दरम् (2)

॥हुई रे॥

जीवन स्त्रोत हो मेरे प्रभु,
आत्म समर्पण क्यों ना करूँ? (2)
जीवन ईश्वरीय है अतिपावन,
उपादेय है, है मन भावन
जो कुछ दो दाता हम हैं प्रसन्न (2)

गरे नी सा सा, ग रे नी सासा सा
गरे नी सा सा, प म, ग रे नीसा सा सा
ग रे नी सासा, गरे नी सा सा प म
गमगम रेमगम रेमगम रेपमप
रे ध पध पमगरे रे मगरेसा नीसामगप

(वाह्यमान) चलाना, सारथी बनके चलाना (क्रियमाण) प्रस्तुत किया जाने वाला (प्रथित) प्रसिद्ध (सुख-प्रतिमा) सुख की छाया

110. योग महिमा

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥

ऋ. 5. 61. 1 यजु. 5/14, 11/4, 37/2

तर्जः *कन्डमिरे कन्डमिरे कन्मनी*

सार्थक ईश्वर की भक्ति तो होगी
जो बन जायेगा सच्चा योगी
मन-बुद्धि जुड़ जाए चिन्मय प्रभु से
परागति फिर क्यों न होगी?

॥सार्थक ईश्वर॥

जुड़ के मिलता है आत्म-ज्ञान उत्तम
सत्यज्ञान भी देते हैं भगवन् (2)
आहुतिरूप होता है ब्राह्मण
पाते 'होता' ईश्वर का अनुकम्पन
जागे हृदय में अनुपम ज्योति॥

॥सार्थक ईश्वर॥

वयुनावित्-विभु तो है ईश्वर
जो जुड़ा है आत्माओं के भीतर (2)
सर्व आत्माओं को प्रभु ही जाने
सबके कृत कर्मों को वो पहचाने
शुभकर्मियों की भरते झोली॥
ईश्वर! ईश्वर! ईश्वर!

॥सार्थक ईश्वर॥

(परागति) मुक्ति, मोक्ष (चिन्मय) ज्ञानमय परमेश्वर (होता) याजक, यज्ञ करने वाला (वयुनावित्) सबके ज्ञानों और कर्मों का जानन हारा (विभु) सर्वत्र विद्यमान, सर्व व्यापक (कृतकर्म) किये हुए कर्म (अनुकम्पन) दया

111. धौंकनी

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे। मरुद्भिरग्न आ गहि॥

ऋग. 1. 19. 1

तर्जः *कार्मोगी वरनगी चूड़ी होगी मुदत्तः*

आज हमने यज्ञ की वेदी सजाई है शाकल्य यज्ञ का लेकर
समिधा घृत चरू यज्ञ-पदारथ होंगे समिधान श्रेयस्कर
॥आज हमने॥

अविकल रूप में है सुसज्जित यज्ञ और यज्ञ भावों का हर अङ्ग (2)
शुद्ध घृत की पड़े आहुतियाँ वायु के संग बहके कर देगी मार्जन
यज्ञ पूर्ण होवे सर्वांग सुन्दर॥
॥आज हमने॥

गौ के शुद्ध दूध से घृत जो मिलता, ऐसी गौएँ ला ला करके रख दीं (2)
पृथ्वी गौ है, किरण वाणीयाँ गौएँ, पिंड-ब्रह्माण्ड हैं इन गौओं की शक्ति
इन सबके दूधों में है सात्विक अध्वर॥
॥आज हमने॥

अग्नि आधान वेदी पे कर दें, आहुतियाँ अगिन-मुख में धर दो
इसका नष्ट ना कोई भी अंश होता, अग्नि देव सुरक्षित इनको कर दे
हवि सुयोग्य होगी, अर्पण कर
॥आज हमने॥

पिंड-ब्रह्माण्ड में गौअें सजी हैं, इसका दुग्ध-दोहन यज्ञ ही है (2)
विश्वरूपी कामधेनु का स्तन, यज्ञकर्ता का सुन्दर ये यज्ञ ही है
है यहीं 'गोपीथ' दुग्ध बलकर॥
॥आज हमने॥

हे अग्निदेव प्राणधन! मेरे प्राणों में प्रीतम तू बस जा (2)
तू है जीवन-याग सम्पादयिता, मेरे प्राणों में अनुभव दे यज्ञ-रसका
हे जीवन के अर्चित अध्वर॥

॥आज हमने॥

यज्ञ भावों से जीयूँ जीवन भर, श्वास-प्रश्वास में भाव ये भर (2)
तू बना रथ वायु झकोरों की कर सवारी मेरे श्वास-प्रश्वासों पर
धौंकनी बना यज्ञ की हे ईश्वर!
हे ईश्वर, ईश्वर हे ईश्वर, ईश्वर ईश्वर।

(शाकल्प) हवन की सामग्री (चरू) हवन के लिये पकाया अन्न (अविकल) शान्त, निश्चल (श्रेयस्कर) मंगल कारक, कल्याण कारक (मार्जन) शुद्ध किया हुआ (सर्वांग) सम्पूर्ण अवयव (अध्वर) यज्ञ, याग (गोपीथ) गायों का दूध रूपी पेय (अर्चित) पूजित (आधान) ग्रहण (सम्पादयिता) काम को पूरा करने वाला (झकोरा) वायु का झोंका (धौंकनी) तेजी से हवा का फेंकना

112. आत्मदेव

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥

ऋ. 8. 11. 1. यजु. 4/16 अथ. 19. 59. 1

तर्जः *कावाहो मालूरंग*

हे अग्ने! व्रतों के पालक
स्तुल्य हो तुम हो अमेय
सत्य नियम के हो पालक
व्रतियों से तुम्हें स्नेह
व्रतपते! उत्तम देव॥ ॥हे अग्ने॥
हम मर्त्यों में आकर बैठे
दीक्षा देने व्रत पालन की
करता निज स्वभाव प्रतिबिम्बित
आत्मा का होता परिक्षालन
व्रत-यज्ञों के तुम्हीं आराध्य हो
तुम्हीं हो साधन तुम्हीं साध्य हो
और तुम्हीं हो ध्येय॥ ॥ हे अग्ने॥
सब देहो में अग्निदेव बन
बने पूजनीय तुम हम सबके
इसीलिये तव यजन करें हम
हवि दे रहे तुम्हें व्रतपते!
सत्य अहिंसा, अस्तेय ब्रह्मचर्य (2)
व्रत सारे हृदय में धरते
व्रतों के बरसाओ प्रभु मेह॥ ॥हे अग्ने

(अमेय) असीम (स्तुत्य) स्तुति करने योग्य (मर्त्य) मरण धर्मा, (मनुष्य) (प्रतिबिम्बित) परछाई होना (परिक्षालन) शुद्धता निर्मलता (ध्येय) ध्यान का विषय लक्ष्य (यजन) यज्ञ करना (हवि) अग्नि में आहुत किया हुआ द्रव्य (मेह) बादल, पर्जन्य, मेघ (अस्तेय) चोरी न करना (ब्रह्मचर्य) ब्रह्म में परिचरण करना

113. परमात्मा का दर्शनीय काव्य

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥

अथर्व. 10/8/32

तर्जः *कितना मीठा होता है*

कितना मीठा होता है कितना प्यारा होता है
ओइम् ही ओइम् में खो जाना, खो जाना
प्रभु का हो जाना, प्रभु का हो जाना॥

कितना...

क्या यही है ओइम् नाम तीनों लोक जो रहा थाम
क्या यही है मस्त वो सोम, जिसमें रमा है रोम रोम
क्या यही जो मन में रहकर भी, करवाता ढूँढ़ ढूँढ़
क्या उसकी ज्योति जागे तो, पाते अमृत की बूँद

कितना...

क्या यही है इतने पास जो हरपल करे निवास
फिर भी ना काहे देख सकें, क्यों होता ना आभास
उसे देखना है देख ले, वो कवि संसार का
ये सारा काव्य रचा हुआ है, सर्वाधार का

कितना...

क्या यही है वो जगत, जो गतिमान है सतत
क्या यही है दिव्य दाता जिसकी चारों ओर चमक
क्या सामवेद का ओइम् ही सुरीला साज़ है
वो कवि है उसके काव्य का अनहद नाद है॥

कितना...

114. सबको पवित्र करने वाले पावक परमात्मा

अग्न॒ आयूं॑षि पवस॒ आ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः। आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म्॥

यजु. 19/38, 35/16 ऋ. 9. 66. 19

तर्जः ***किनाविले जलालगल तुरंगडुन्न दारा लो :***

प्यारे प्रभो! उन्नत करो, जीवन को सर्व प्रकार से
दो अन्न बल शक्ति सामर्थ्य व कर दो दूर विकार से
तू हमको बचाले पाप-पापियों से, थाम के हमारा हाथ
मन को सँवार दे

प्यारे प्रभो...

अन्न खाद्यादि पदार्थ हमें देकर करते हृष्ट-पुष्ट बलशाली
इसके सुसेवन से बल पाके होते, विज्ञान इच्छा शक्ति-धारी
विज्ञान बल शक्ति से होके सम्पन्न होते उन्नति के अधिकारी
कर कर कृपा, प्यारा सखा देता सदा
भर भर झोली उत्साह से॥

प्यारे प्रभो!...

दुष्ट लोभी पागल पशु-वृत्तियों से, रखता है दूर प्यारा सखा
हमको निरन्तर वेदों के ज्ञान से सत्प्रेरणायें देता है सदा
अतिक्रोध मद मोह लोभ काम से, देती प्रेरणायें उसकी हटा,
करकर कृपा प्यारा सखा देता सदा
भरभर झोली उत्साह से॥

प्यारे प्रभो...

पशु-वृत्तियों से जब करते हो दूर, देते हो शुभ प्रेरणाएँ
करते साथ में प्रार्थनाएँ हम भी, दूर हों सभी ऐषणायें
इसके पुरुषार्थी बनें हम, तुझसे ना दूर हो जाएँ
कर कर कृपा, प्यारा सखा, देता सदा
भर भर झोली उत्साह से॥

प्यारे प्रभो...

115. परमेश्वर का दिव्य दर्शनीय काव्य

अन्ति॒ सन्तं॒ न ज॑हा॒त्यन्ति॒ सन्तं॒ न प॑श्यति।
दे॒वस्य॑ पश्य॒ काव्यं॒ न म॑मार॒ न जी॑र्यति॥

अथर्व: 10/8/32

तर्जः *किस तरह भूलेगा दिल :*

गा रहा हूँ गीत प्रभु तेरी ही रसना से लाया हुआ
दे दो प्रभु अपना आशीश तेरे ही चरणों में आया हुआ॥
॥गा रहा हूँ॥

ऐसी दुनियाँ क्या करूँ? जिसमें प्रभु ना तेरी छाप
क्या करूँ ये छलकपट ईर्ष्या द्वेष के भारी पाप
दुनियाँ मेरी है गर यही मानुष-जनम क्यों पाया हुआ?
॥गा रहा हूँ॥

पाप-दुरित की काली घटाओं मुझपे ना बरसों, सुनो विनय!
क्या करूँगा भीग कर जिस जल में होगे निर्लज्ज-विषय
वेद के पावन पर्जन्यों से हूँ मैं नहाया हुआ॥
॥गा रहा हूँ॥

दूर तू मुझसे है कहाँ? सबसे अधिक तुम मेरे पास
तुझको मैं केवल जान लूँ देखूँ जगत में तेरा प्रकाश
हे इन्द्र! जगत के काव्य में मेरा भी नाम है आया हुआ
॥गा रहा हूँ॥

प्यारे प्रभु आनन्दमय! झोली में भर दो निर्मल आनन्द
संसार के सारे प्रपञ्चों से करो मुझको स्वच्छन्द
ललित जगत के काव्य का गीतानन्द तेरा गाया हुआ॥

(चरण) श्लोक की पंक्ति (चरण) आश्रय (पूर्जन्य) मेघ, बादल (झोली) आनन्दमयकोष, आँचल (स्वच्छन्द) स्वतन्त्र (ललित) सुन्दर, मनोरम, मनमोहक (गीतानन्द) आनन्द से भरा गीत (इन्द्र) आत्मा और परमात्मा

116. विष्णु के तीन पग

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥

ऋग्. 1. 22. 18

तर्जः *कुडजात्रीयिल कुडचोडुयाः*

त्रिधर्म धारण किये विष्णु ने, द्युलोक अन्तरिक्ष पृथ्वी में
व्याप्त है, वो तीन लोकों में, गुण कर्म और स्वभाव को धारण,
किया हर स्थिति में, उसकी हर गति है सांद्र रक्षाकारी॥
प्रभु की बड़ी कृपा...

याज्ञिक विधियों में वो प्रातः माध्यन्दिन और सायं सवनों में है व्याप्त
हर सवन है उसका कल्याणकारी चहुँ दिशी विस्तारित है प्रताप
मानवों के मन देह आत्मामें है व्याप्त साधकों का है वो तारक॥
॥त्रिधर्म॥
पृथ्वी गिरी सागर नदी वृक्ष वनस्पतियों का वो विष्णु है धारक
विद्युत वायु चन्द्र मेघादि देवों का धारक है और प्रतिपालक
द्युःलोक में सूर्य तारागणों को वो चमकाता है बन प्रकाशक॥
॥त्रिधर्म॥

आत्मा को, उसके सारे गुणों को अपने में धारण किया है
जगत के सूक्ष्म, स्थूल, कारण, शरीरों को, धर्मों को धारण किया है
वरना इन सबको गुण धर्म व्यापार नष्ट हो जाते थे अब तक
॥त्रिधर्म॥
प्यारे विष्णु विश्व रक्षक हैं 'गोपा' अहिंस्य हैं उसके कारज
कर ना सके कोई नष्ट त्रिलोक को, इसका ना है किसी में साहस
स्तुत्य है श्लाघ्य है गुण कीर्तनों से, गौरवान्वित करें उसके ऋत सत्य
॥ त्रिधर्म॥

(सांद्र) सुन्दर (सवन) यज्ञ (गोपा) रक्षक (श्लाघ्य) प्रशंसनीय

117. मधुर वनस्पतियाँ मधुर वाणियाँ

मधु॑मान्नो॒ वन॒स्पति॒र्मधु॑माँ अस्तु॒ सूर्यः॑। माध्वी॒र्गावो॑ भवन्तु नः॥

यजु. 13/29. ऋ. 1. 90.8

तर्जः *कुडवल्ल कडयरी गिल*

माधुर्य जीवन का अनुभव कर
अद्भुत जीवन में आनन्द भर
मधुर आहार विहार
मधुर हो स्वास्थ्य-मन
सर्वत मधुरता प्रस्त्रित कर
॥माधुर्य जीवन का॥

सूरज मधुरता जीवन में लेके आए
अन्न वनस्पति धान लहरायें (2)
जीवनी शक्ति को मधुर बनायें (2)
उष्णता तेजस्विता ओज हम लाएँ
आरोग्य दायक वनस्पतियाँ पायें
ये पुष्टिवर्धक तत्त्व होवें हितकर
॥माधुर्य जीवन का॥

ऐसे ही गौओं से पायें हम पुष्टि
घृत दूध नवनीत की होवे वृष्टि (2)
मन और शरीर को पुष्ट बनायें (2)
वाणियाँ भी अपनी सरस सरसायें
सूर्य-रश्मियों से भी स्वास्थ्य बल पायें
जिससे ये समाज के सज्जन बनें अनवर
॥माधुर्य जीवन का॥

(प्रस्त्रित) बहा देना (रश्मियाँ) किरणें (अनवर) श्रेष्ठ, उत्तम

118. हे नाथ मैं अपनी भक्ति तुम्हारे हृदय तक पहुँचा दूँगा

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

ऋ. 7. 86. 8

तर्जः *कुन्नपू पोले भुन्निल कातिराडी यावने कुभ*

तुम तक पहुँचाने आया नाथ! अपनी भक्ति को
गुण कीर्तन गाये प्रेम से मैंने आप के
आपकी भक्ति में डूबे हैं पल दिन-रात के॥
भक्ति के बिना क्या जीना हो सकता है सम्भव?
मेरी ये हार्दिक भक्ति प्रेम से अनुभव करो
आशीश मिलें प्रभु आपके हाथ के॥ ॥तुम तक॥

1. आप हमारे योग और क्षेम में, प्रभुजी (2)
सुख और शान्ति निरन्तर देते रहो
निर्विघ्न बना दो पाये हुए योग-क्षेम को
और प्रभु कल्याण सदा बरसाते रहो आ ऽ ऽ ऽ ॥तुम तक॥

2. जीवन में पायें हम आदर्श को, प्रभुजी (2)
प्राप्त करा दो हे नाथ! स्वस्ति को
जीवन बना दो प्रभु-भक्ति से ओतप्रोत
सचमुच प्रभुजी ऐसी कृपा कर दो॥ आ ऽ ऽ ऽ ॥तुम तक॥

3. हे स्वधावान्! विराट विश्व के धर्ता, प्रभुजी (2)
सामर्थ्य-अन्नवान् तुम ही तो हो
सामर्थ्य अन्न बल हमको भी प्राप्त हो
कृपा की दृष्टियाँ हम पर भी कर दो॥ आ ऽ ऽ ऽ ॥ तुम तक॥

4. यहाँ वहाँ भटकते मेरे आत्मा! प्रभु की (2)
शीतल शरण में प्रस्थान करो
निस्वार्थ सेवा का जीवन बना लो
योग-क्षेम सुख-शान्ति प्राप्त करो॥ आ ऽ ऽ ऽ

(योग) अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति (क्षेम) अभीष्ट की प्रयोजन पूर्ति (स्वधावान्) सामर्थ्यवान और अन्न (स्वस्ति) कल्याण, मङ्गल

119. प्रलोभन का नाश

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म॥

यजु. 40/17

तर्जः *कूड़ वर्मिया इन कूड़ वर्मिया*

भोग में फँस गया क्यों सत्य तज दिया?
भोग में फँस गया क्यों सत्य तज दिया?
है प्रलोभन, ना है संयम
और विवेक का, कर रहा भञ्जन
इन्द्रियों की खिचावट में
लुटा रहा क्यों तन मन धन
ओ मूरख मानव, कर चिन्तन मनन

॥भोग में॥

जब प्रलोभन खींचे तुझको
इसमें ना हो आसन्न
लेके वेदोपदेश मन में
कर ले विवेक ग्रहण
बल प्रभु से माँग के
दृढ़ निश्चय ठान के
लोभ को विष ही मान के
भरित हों भाव दान के
कर ले दृढ़मन, (2) ओ ऽ ऽ ऽ
विज्ञ आत्मन्!
श्रेय मार्ग का कर मार्गन
है तू आर्य अतिपन्न पन्थी, अप्रतिम!

॥भोग में॥

चिकनी चुपड़ी बात से ठग
लूटते रहते धन
पर नसीहतें लगतीं कड़वी

किन्तु इसमें है दम
हट कर प्रेय मार्ग से
चलना है श्रेयमार्ग पे
हटकर निज स्वार्थ से
रखें पग सन्मार्ग पे
वेद मन्थन (2) आ ऽ ऽ
कर ले आत्मन्
छोड़ देना तू प्रलोभन
हे तू आर्य अतिपन्न पन्थी, अप्रतिम!

॥भोग में॥

सत्य स्वरूप है ये परमात्मा
उसका पा लो दर्शन
मन पे सृष्टि का चमक दमक सा
पड़ा है आच्छादन
जब तलक दूर ना किया
कैसे होगें दर्शन
सृष्टि के मोह ने इसमें
डाले हैं अनुबन्धन
तज दे बन्धन आ ऽ ऽ ऽ
कर ईश्वर का निदिध्यासन
है तू आर्य अतिपन्न पन्थी अप्रतिम!

॥भोग में॥

(प्रलोभन) लालच (भञ्जन) विध्वंस, नाश (आसन्न) लिप्त, लगा हुआ (विज्ञ) बुद्धिमान (श्रेय) कल्याण (प्रेय) सांसारिक (मार्गन) खोज, अन्वेषण (अतिपन्न) बढ़ा हुआ, उन्नत (अप्रतिम) अनुपम, निराला (अनुबन्धन) लगाव, आसक्ति (निदिध्यासन) ईश्वर का ध्यान

120. वह एक है

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

ऋ. 1. 164. 46

तर्जः *कूवरम गिडी पैदली कुड्क चिम्बद पीतराम*

इन्द्र मित्र अग्निवरुण, सर्वप्रकाश अनुगुण
प्रेरक ज्योतित सर्वोत्पादक धारे प्रभु अतिगुण
है वो दिव्य गरुत्मान है सुपर्ण अति महान
सर्वव्यापक सर्वाधार ज्ञानवान प्रद्युम्न॥
है प्रभु अत्यन्त महान, हैं अनन्त उसके नाम...
गुण कर्म स्वभाव में सर्वोत्तम सम्पूर्ण॥

इन्द्रमित्र...

परम ऐश्वर्यवान कहलाता है इन्द्र
प्रीति कारक प्रीतियोग्य है वही प्यारा मित्र
वरने योग्य सर्वश्रेष्ठ है वो वरेण्य वरुण
ज्ञान स्वरूप है वो अग्रणी अग्निस्वरूप उत्तुंग
पालनकर्ता, और पूर्णकर्ता, है सुपर्ण महान
गरुत्मान, आत्मा महान निपुण॥

इन्द्र मित्र...

अन्तरिक्ष में बहने वाली वायु के समान
सर्वव्यापक सर्वाधार है मातरिश्वा महान
आओ पूर्ण परमेश्वर को करें प्रणत प्रणाम
स्मरण उसका करते करते करें अमृतपान
अपने जीवन को, उन्नत करके, होवें निष्काम
ज्ञानवान, देव समान करें पुन॥

इन्द्र मित्र..

(अनुगुण) समान गुणवाला, सुयोग्य (प्रद्युम्न) अत्यंत बलवान, (सुपर्ण) सुन्दर किरणों वाला (गरुत्मान) परमात्मा रूप गुरु (पुन) पुण्य

121. ब्रह्मणस्पति की रक्षा का फल

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते॥

ऋ. 2. 23. 5

तर्जः *केसादी पाडम तुरुम्मे*

वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते! हे वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते!
सकल ब्रह्माण्ड के हो तुम स्वामी
रक्षण पालन भक्तों का करते॥
॥वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते!॥

शरणागत के अघ दुःख बाधायें हरते रहते ब्रह्मणस्पति
शत्रु आक्रामक, स्वार्थी अदानी, हरते प्रभु बाह्ययान्तर के॥
॥वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते!॥

कुसंगती के पापिन पङ्क में प्रायः मनुज फँस जाते हैं
किन्तु ब्रह्मणस्पति के मित्र को पाप-द्वयावी ना ठग सकते॥
॥वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते!॥

वेद-ईश के जो हैं विरोधी ब्रह्मद्वेष का जाल फैलाते
नास्तिकता का प्रचार करते, भरते स्वार्थ, पाखण्ड करते॥
॥वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते!॥

पञ्चशत्रु हिंसक आत्मवञ्चक, पाश में ना फँसना उनके
ब्रह्मणस्पति के सखित्व में सब, गढ़ तोड़ दे रिपुदल के॥
॥वेदज्ञ ब्रह्मणस्पतो॥

द्वेष्टाओं की दृष्टि हैं दूषित, उनके स्वप्न चाटते धूल
जब पहाड़ उनपे टूटे तब ईश-भक्त पे भेद ना करते॥
॥वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते!॥

कर्णधार जीवन नैया के, केवल तुम हो ब्रह्मणस्पति
आत्म समर्पित आप्त आत्मना दुष्फल ना पाया करते
॥वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते!॥

हे ब्रह्मणस्पते! ब्रह्मबीज ब्रह्मण्य अपने संरक्षण में ले लो
दम्भ दुरित द्रुह्-द्वेष मिटा दो, हे प्रतिपाल! प्रगति-पुरु-पथदे॥
॥वेदज्ञ ब्रह्मणस्पते!॥

(ब्रह्मबीज) ओइम्, (ब्रह्मण्य) पवित्र, पावन (बेदज्ञ) वेद का ज्ञान रखने वाला (ब्रह्मणस्पति) ज्ञान एवं ब्रह्माण्ड के स्वामी (अघ) पाप, (आक्रामक) आक्रमण करने वाले (पङ्क) दलदल, कीचड़ (कंचक) ठग (द्वेष्टा) द्वेष करने वाले (द्वयावी) दोनों तरह से आचरित (ब्रह्मद्वेष) वेद विहिन कर्म या भक्ति का विरोध (पुरु) देवलोक (दम्भ) छल-कपट, धोखा (पहाड़ टूटना) मुसीबत की घड़ी आना (कर्णधार) मल्लाह पार लगाने वाला (आप्त) विश्वसनीय, योग्य व्यक्ति (आत्मना) खुद, स्वयं (द्रुह) षड्यंत्र (पाश) बन्धन (रिपु) राक्षस

122. स्वामी हमें हमारा हिस्सा दो

अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन्भागमीमहे॥

ऋ. 1. 24. 3

तर्जः *कैद पूविन कनिकुरुम्बिल कुट्ट कुक्किला*

प्यार करूँ तुझसे वरुण है तू ही सखा
छोड़ तुझे जाऊँ कहाँ अब तू बता?
बुला ले अपने चरणों में
पुनः मोक्ष के आनन्द में मुझको बहा॥

प्यार करूँ...

हे सविता देव!
भेजा मुझे तूने यहाँ
ये तो प्रभु तेरी कृपा
उत्पन्न करने वाला है तू
पग पग तू ही सदा
प्रेरणा देने वाला
सारे जगत का है तू विभु
रवि-शशि तारों का
सिन्धु और पहाड़ों का भी जनक तू
कोयला लोहा प्राणियों का भी जनक तू

प्यार करूँ..

हे सविता देव!
केवल ये रचना नहीं
इनकी सतत् कार्य शक्ति
सारी गतियों का प्रेरक है तू
तेरे बिन कार्य शक्ति
भांति भांति इनकी गति
कोई अन्य ना कर सके प्रभु
इसलिए तुझको दाता
कहते हैं प्रेरक सविता

जगत परिभू
वार्य वस्तुओं के ईशान
एकमात्र हैं भगवन्
प्यारे हितू॥

प्यार करूँ...

हे सविता देव!
निज कर्मानुसार
सुख-दुःख का आधार
नियमों में बाँधें रखते प्रभु
'अवन' प्रभु है दानी
निजशक्ति कल्याणी
भाग उससे अपना माँग ले तू
सुख कल्याण का
नम्रता से माँगूँ याज्ञिक ही ऐश्वर्य दे तू
हे सुख नायक
मोक्ष प्रदायक प्यारे बन्धु॥

॥प्यार करूँ॥

हे सविता देव!
सुनते हो तुम पुकार
याचकों के हो दातार
कर दो उद्धार हमारा पितु
हे ललित मोहन!
संकट मोचन!
शुभ कर्मों के जगाओ क्रतु
हे अदितिमाता!
मुझे निज अंक में बिठा ले तू
हे मेरे आत्मा!
सुख पा लें जो ना पाया अजहू॥

(विभु) दृढ़ शक्तिमान, सर्वव्यापक (परिभू) परिपालक (ईशान) ऐश्वर्यवान स्वामी (हितू) हित चाहने वाला (वार्य) वरण करने या चाहने योग्य (अवन) दान, इच्छा प्रीति, रक्षण (अजहू) आज तक (सविता) विश्व ब्रह्माण्ड के रचयिता

123. विश्व खेत को सींचने वाला

नीचीनवारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम॥

ऋ. 5. 85. 3

तर्जः *कोई सुल्ल कूड़ा दे कादली*

कोई तेरी महिमा को क्या कहे!
ये हमारी समझ से है परे (2)
द्युः से पृथ्वी लोक तक
सृष्टि है विशाल
क्या प्रभु नहीं तेरा?
अद्भुत कमाल
इसकी ना कोई मिसाल
हर शै में सुर और ताल
रखता ध्यान दीन दयाल
क्या कहूँ, मैं किस किस का॥

॥कोई तेरी॥

बहता है नीचे की ओर सदा जल
जिससे कार्य सिद्ध होते
नीचे बहने के गुण से
कल्याण करे
सब प्यास हरे
जल बहता फिरे
महिमा गाए
इक ओर है सूरज
सबका करे हित
अनन्त काल से
एक ओर से पृथ्वी का
तुमने हाथ है थाम रखा
दूजे रवि तारे चन्दा

क्या कहूँ मैं किस किस का॥

॥कोई तेरी॥

सूर्य का द्योतक मस्तिष्क है पग!
अन्तरिक्ष हृदय आकाशी
मस्तिष्क देखो चमके
ज्ञान-ज्योति दमके
पग पृथ्वी चले
कर्मशील रहे
मन ज्योति जले
सत्कर्म कमाये
न्याय दिलाते
तुला पे जो तुलते
इन्द्र का ध्यान तो कर्मों से
जो आश्रित उन धर्मों पे
ध्यान रखें प्रिय भक्तों का
क्या कहूँ मैं किस किस का॥

कोई तेरी...

प्रभु वर्षा का सींचन जल से करते
बन इन्द्र करते रहते वर्षा
अन्यथा वर्षा भी हरते
मेघ बन गिरी पे
छा छा बरसे
गति पवन करे
और मेघ चलें
धरती पे बरसे
जनहित करते
रहे ना कोई तरसा
हम पे दया की नित वर्षा
अमृत की बन के धारा
सबका रखते ध्यान सदा
क्या कहूँ मैं किसकिस का?

कोई तेरी...

124. भद्रक्रतु साधुबल और महान सत्य का नेता

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः। रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ॥

ऋ. 4. 10. 2.

तर्जः *कोडार कोटिल तेन्नुम सुईले*

हे अग्ने! हे ज्योतिर्मय!
अग्रणियों के अग्रणी रे
निराश्रयों के आश्रय हो
हे प्रभो!
भद्रक्रतु के नेता हो
बृहत् सत्य के वेत्ता हो
॥हे अग्ने!॥

हम तो स्वयं हैं बड़े ही दुर्बल
करते अपेक्षा तुझसे भगवन्
बाँह पकड़ के भव सिन्धु से
पार कराता तू परमात्मन्
रथि रे! हे रथि रे!
अशरण-शरण शक्तिदायक तुम
प्रत्येक विपत का करते वारण
हम सबका अति महान सहाई तू ही रे॥
॥ हे अग्ने॥

कर्म-अकर्म की रहती है दुविधा
सत्य कर्म हम क्या जानें?
भद्र कर्म तुम आके बताते
रथि रे! हे रथि रे!
तुम 'साधुबल के प्रख्य-प्रदाता
दैहिक मानसिक बलों के दाता
ज्ञान-शूर तू बलियों का बलि रे (2)
॥हे अग्ने॥

बृहत्सत्य के तुम हो नेता
सच्चे मानव के हो प्रणेता
सत्यभिभाव से स्मरण जो करते
उनमें सत्य की ज्योतिस् भरते
रथिरे! हे रथिरे!
रथि के रूप में हम तुम्हें चाहें
श्रेष्ठ वस्तुएँ रथि से पायें
सत्पथ प्रेरक इक तू ही सही रे (2)

॥हे अग्ने॥

जैसे रथवाहक रथ भर के
सब अभीष्ट वस्तु दे जाते
वैसे प्रभु तुम दिव्य वस्तुएँ
तीव्र गतित रथ में पहुँचाते
रथिरे! हे रथिरे!
हमें भद्र क्रतु साधुबल दो
सत्य की विपुल देन अव्वल
हे दीन बन्धु सच्चा सहायक तू ही रे

॥हे अग्ने॥

(अग्रणी) आगे ले जाने वाला (भद्रक्रतु) श्रेष्ठ कर्म (वेत्ता) जानकार, पहचान (अपेक्षा) प्रत्याशा, चाह (प्रख्य) साफ, स्पष्ट (ज्ञान-शूर) जानशक्तिवान (प्रणेता) निर्माता (सत्यभिभाव) सत्य में परमोकृष्ट (ज्योतिस्) चमक प्रभा (अभीष्ट) इच्छित, चाहा हुआ, (गतित) गतिशील, (अव्वल) श्रेष्ठ, (विपुल) बहुत, अत्यधिक

125. जलबिन्दु सा शुभ

अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद्द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा॥

ऋ. 7. 87. 6

तर्जः ***कोडार कोटिल तेन्नुभ सुईले आकाश तेङुम तिलकुईले***

वरणीय प्रभु की विभूति का कोई कहाँ तक वर्णन करे,
जाए ना दृष्टि उससे परे है सृष्टि
वाह रे!
महिमा का वर्णन क्या करें प्रभु?
निराले रूप में है तू
वाह रे!

॥वरणीय॥

1. सिन्धु की जलराशि कितनी अथाह है
नियमित उसको कैसे किया है
लाखों मन प्रतिक्षण जल डाले
असंख्य नदियों का पानी लिया है
फिर भी, सीमा का,
सागर ने कभी भी अतिक्रमण किया ना
ना ही नदियों को आने से रोका
ना ही तनिक जल-वृद्धि कभी वो करे
वाह रे!

॥वरणीय॥

2. विश्व की रचना की जहाँ महिमा
आन्तरिक गुण भी प्रभु में अनेक
प्रभु के गुण अन्यत्र न मिलते
सूर्य से ज्यादा है उसका तेज
तम से है प्रथग्भूत
जल-बिन्दु जैसे वह श्वेत ही रहते
निष्कलंक उन्हें शान्तिदायक कहते

विश्व के महापिण्डों को वो धारण करे,
वाह रे!

॥वरणीय॥

3. प्रभु वायु है अनन्त बलों के,
सुपारक्षत्र प्रभु करते मंगल
उत्तम रीति से है वो पारक,
उसकी शरण में जाते सम्भल, जीवन-उद्‌देश्य
प्राप्त करने में रहता सदा सहायक,
परमानन्द के धाम का नायक
उसे जान लेने पे मोक्ष का आनन्द मिले,
वाह रे!

॥वरणीय॥

4. प्रभु हैं गम्भीरशंस वेदोपदेशक,
दिये गहरे वेदोपदेश के ग्रन्थ
वेद विहित किया जिसने आचरण,
पा लिया उसने सत्य का पंथ
दुःख का करें अन्त
बन सकता है स्वर्ग धाम ये संसार
चलता रहे जो वेद के अनुसार
गम्भीरशंस मृग प्रभु को जान ले,
वाह रे!

॥वरणीय॥

(प्रथग्भूत) अलग सत्ता (सुपार क्षेत्र) दुःख से पार लगाने वाली शक्ति (गम्भीरशंस) भारी स्तुति का अधिकार गम्भीर उपदेशक (मृग) जानने योग्य

126. वेद का आर्थिक दृष्टिकोण

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर॥

ऋग. 1. 8. 1

तर्जः *कोल कुडल किली केतू राधे इन राधे*

ऐश्वर्य माँगूँ तुमसे, ले चल प्रभु आगे
पाऊँ ना अदीनता, सौभाग्य मेरा जागे
पुत्र पिता से ना माँगे तो भला किससे माँगे?
ऐश्वर्यों का तू भण्डार, देवे तो तेरा क्या लागे?

तिनका बहुत हलका होता, तिनके से भी हलकी रूई
रूई से भी हलका है याचक, आस उसे देता तू ही
हाथ पसारे रहती खड़ी, इक सम्राट की मजबूरी
कृपा न करता जब तक तू, रहती तृप्ति से दूरी
साधिकार से करता हूँ विनय, आवश्यक धन बरसा दे॥
॥माँगूँ॥

धर्म धरूँ तो माँगूँ अर्थ, मिल जाए तो करूँ ना व्यर्थ
बाँटूँ इसे परिवार-समाज में, मानव जीवन का यही फर्ज़
मिलेगी सुख शान्ति इसमें, क्योंकि इसमें पर-सहयोग
गुलछर्रों में ना जाऊँ खो, धन का करूँ मैं सदुपयोग
पुरुषार्थ और सूझबूझ से, अर्जित धन बाँटूँ ला के
॥माँगूँ॥

विषम स्थिति-पूर्ती का उपाय, व्यक्ति-व्यक्ति बाँट के खाए
जानता हूँ प्रभु यही है यज्ञ, बनें एक दूजे के सहाय
'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि' वेद ने यज्ञ के भाव सिखाए
जहाँ ये भावना होवे नष्ट वहीं पे है गतिरोध-अन्याय
इसीलिये प्रभु यज्ञ भावना, प्रेम सौहार्द्र से ही जागे॥
॥माँगूँ॥

विजयी बना रहूँ जो मिले धन, षट् रिपुओं से बचा लूँ मन
काम क्रोध मद लोभादि, लूट ना जायें अर्जित धन

जला न दे संग्रह की आग, बढ़े ना तृष्णा पागलपन
दुर्बल को ना सताऊँ कभी, अत्याचार का करूँ दलन
संग्राम में खड़ा कर दूँ मैं, आत्म-निरीक्षण को ला के
॥माँगूँ॥

विजयी धन दो 'सदासहम्' बने सहिष्णु स्वावलम्ब
कमाई धन की हो चिरस्थायी, दे देकर भी ना हो कम
धन अन्याय का हो वर्जित, धर्म से हो धन का अर्जन
हो व्यवहार कुशल वसुधन, ना छल-छिद्र का हो कारण
हे इन्द्र! इष्टि कर दो पूरण, झोली फैलाकर माँगें
॥माँगूँ॥

(अदीन) धनवान अमीर (अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि) जो यज्ञ की भावना जिस पर दुनियाँ चल रही है वह केन्द्र बिन्दु है, बाँटकर खाने का (सौहार्द्र) मित्रता, मैत्री (अर्जित) कमाया हुआ (सदासहम) सदा स्वावलम्बी और सहिष्णु बनाने वाला (सहिष्णु) सहनशीलता (दलन) विनाश

127. प्रवाह से बचें

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश॥

ऋ. 1. 164. 32.

तर्जः *कोल कुडल किलीकेतू राधे इन राधे :*

बढ़ता जा जीवन में आगे ही आगे
प्रभु को सिमर जिससे अघ दुःख भय भागे
विषय ग्रस्त अज्ञानी जन, भोग रहे सांसारिक धन
अन्धे बन अज्ञान के वश बिन समझे इत उत भागें

राग द्वेष मद मोह में फँस
विषय विकारों के होके वश
भोगना होगा बोया फल
सदा ही मिलता जस का तस
बार बार ले ले के जनम

फिर से भोगे किये करम
निर्ऋति का दुर्गम मार्ग तो
चैन से कभी ना सोने दे॥

॥बढ़ता जा॥

मानव स्त्री पशु नदी पहाड़
देखता रहता नज़रें गाढ़,
देख के भी अनदेखा करे
तत्त्वों का ना दीखे आधार
इसीलिए दुःख कष्ट मिले
रहे सर पे टाँगी तलवार (2)
लेते जकड़ सांसारिक पाश
चाह के हाथ ना कछु लागे॥

॥बढ़ता जा॥

ऐ मानव अब जाग भी जा
हो ना जाना बहुप्रजा
आश्रय ना ले निर्ऋति का
पा आत्मा में प्रबल प्रभा
द्युः प्रकाश की ओर तू बढ़
यही कल्याण की सही दिशा
संसार के हर तत्व को
जान-मान के बढ़ आगे॥

॥बढ़ता जा॥

(अघ) पाप (निर्ऋृति) बड़े घोर कष्ट (पाश) बन्धन (बहुप्रजा) बार-बार जन्म देना, बच्चे पैदा करता हुआ

128. श्रद्धा का रहस्य

श्रद्धाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूतये हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥

ऋ. 10. 151. 1

तर्जः *खुदाने पामवानुं नाम श्रद्धा*

प्रभु को पाने का है नाम श्रद्धा
कर्तव्य को पालने का नाम श्रद्धा॥
॥प्रभु को॥

धीरज की सौम्य गठरी शीश धरके
दुःखों को ढ़ाकने का नाम श्रद्धा॥
॥प्रभु को॥

मिले या ना मिले ईश्वर का दर्शन
पड़े चरणों में रहने का ही नाम श्रद्धा॥
॥प्रभु को॥

सम्बन्ध के टूटने का नाम है शंका
सम्बन्ध को बाँधने का नाम श्रद्धा॥
॥प्रभु को॥

दशा चाहे हो कोई उन्नति की
समर्पित-स्वात्मा का ना श्रद्धा॥
॥प्रभु को॥

धर्म संग्राम राष्ट्र ज्ञानात्मग्नि पे
स्वाहा हो जाने का ही नाम श्रद्धा॥
॥प्रभु को॥

जलाओ अग्नि चाहे कितनी भौतिक
ज्वलन्त, अंतःकरण का नाम श्रद्धा॥
॥प्रभु को॥

अडिग विश्वास, प्रेरणा, भव्य भावना
लक्ष्यों को पाने का नाम श्रद्धा॥
॥प्रभु को॥

129. कैसी बुद्धि और क्रिया हमें चाहिए

स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा। धियाविड्ढि पुरन्ध्या॥

ऋग. 8. 92. 15

तर्जः *गन्थ राजन पूविरन्नु नीत लाड्य काटिल*

इन्द्र राजन् करो कृपा
करो हितकर हम पे वर्षा
बुद्धि-क्रिया कर दो प्रदान
बनके रक्षक दे दो प्रज्ञा
करें राष्ट्र समाज व विश्व निर्माण
यथा शक्ति हमारा हो योगदान
बहुल बुद्धि दे दो तुम
जिससे सत्क्रिया से हम
दीन असहायों का
भला करें हरदम॥

॥इन्द्र राजन्॥

ऐसी बुद्धि दो हमें जो सनिष्ठा नित्य होय
लोहा उनका ले सकें जिनकी दस्युवृत्ति होय
घोर बुद्धि और क्रिया प्राप्त करें तुमसे दाता
जिससे धन माल जनों की रक्षा
करते जाएँ सदा हम

॥इन्द्र राजन्॥

जब जब बुद्धि और क्रिया, सच के विपरीत चली
भीषण संग्राम हुए वृत्ति आतंक में ढली
हुई रण क्षेत्र में क्षति लुटे लोग हो गए दुःखी
धारण-पोषण कर सकें ऐसी पुरन्धि
दो हमें भगवन्

(प्रज्ञा) ज्ञानवान बुद्धि (धिया) सद्बुद्धि एवं सत्क्रिया (सनिष्ठा) सर्वाधिक लाभ पहुँचाने वाली (बुद्धि) (दस्युवृत्ति) राक्षसी वृत्ति (पुरन्धि) बहुतों को धारण करनेवाली बुद्धि (बहुल) प्रचूर, अत्यधिक

130. इन्द्र को हव्य प्रदान करो

पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्त्तन॥

ऋ. 1. 142. 12

तर्जः ***गन्ध राजन् पूविरन्न नी तइद्रुम पाटिल***

इन्द्र राजन् को दूँ हवि, वहीं हैं मेरे प्यारे
भौतिक यज्ञ की ना ये हवि, उसपे हम नित निवारें
सामग्री धृतादि का वो इन्द्र बोलो भला उसका क्या करें?
पाना है उसको यदि
आत्मसमर्पण की हवि
अर्पण कर दें अहंकार बिना रे॥

इन्द्रराजन्...

जो भी कुछ करते हैं कार्य
बन के रहें उसमें आर्य
खाना पीना पूजा दान
भाव ना हो उसमें अदान
होंगे हम पूर्ण तैयार
त्याग देंगे जब अहंकार
'मैं' की भावना के कारण
पहुँचे ना हम इन्द्र के द्वारे॥

इन्द्रराजन्...

इन्द्र है पूषण्वान्
और है मरुतवान
इन्द्र हैं सूर्य वाले
उनसे प्रेरित पवन प्राण
इन्द्र हैं विश्वदेवाय
इन्द्रिय मन बुद्धि सहाय
और अग्नि जलादि देव
जुड़े रहते हैं उसके सहारे

इन्द्रराजन्...

सर्वव्यापक वो वायु
गायत्रवेपस झुमाऊ
भक्तिगान का चाहक
प्रिय हैं उसे उपासक
भक्तिगान की तरंगें
इन्द्र में भरती उमंगे
आओ त्यागकर 'अहम'
जाएँ उसपे वारे वारे

इन्द्रराजन्...

(झुमाऊ) झूमने वाला (अहम) अहंकार (गायत्र वेपस) गान से झूमने वाले

131. अमति दुर्भति और पाप दूर हों

आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति॥

ऋ. 4. 11. 6

तर्जः *गुन्डिल लोभी पुट्टिल दमा गोदावरी*

हे बल के पुत्र, प्रभु इष्टकारी
हमको बनाओ प्रभु आज्ञाकारी
पालक हो तुम, रक्षक हो तुम
हो अतिशय बल के तुम बलधारी॥

॥हे बल के पुत्र!॥

करते प्रार्थनाएँ हाथ जोड़ हम, म् ऽ ऽ आ ऽ ऽ ओ ऽ ऽ
पाप दुर्मति हमारी हर लो तुम, म् ऽ ऽ आ ऽ ऽ आ ऽ ऽ
मतिहीन ना जुटा सके साधन,
पराधीन इसलिए हुए हम,
दुर्मतिवश हो गया पतन,
पाप व्यसन हरो हे अघारी!॥

॥हे बल के पुत्र॥

निशाओं में करते जैसे प्रकाशन

तमोगुण का वैसे करो शमन
व्याप्त होके मनोभूमि करो पावन
बोध करा दो-कर्तव्य भगवन्
हे सर्वात्मन् हे शिव सूदन
आओ हृदय में हे हृदयहारी!

॥हे बल के पुत्र॥

सा ग ग म प सां नी नी साऽ पप
नी सां रे सां सा, पध नी धप, मगध

(अघारी) पाप नाशक (ज्वलन्त) जगमगाहट (शिव सूदन) कल्याणकारी गुण धारक (हृदयहारी) हार्दिक आनन्द देने वाला

132. ऋत महिमा

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः॥

ऋ. 4. 23. 8

तर्जः *घडणारे सारे घडून गेले पुरते*

सृष्टि नियमों को परमेश्वर ही घड़ते
ऋत की महिमा से ज्ञान प्रकाशित करते

॥सृष्टि॥

ऋत सत्य का आदिमूल तो है परमेश्वर
हर शक्ति का धारण कर्ता है सर्वेश्वर
ऋतमान मनुष्यों के पापों को हरते

॥ऋत की॥

अग्नि और वाष्प से रेल जहाज हैं चलते
विद्युत से शब्द वाहक कुछ यन्त्र भी बनते
ये प्रकाश ताप अग्नि तत्वों में रमते

॥ऋत की॥

सृष्टि के तत्वों पे करे मानव अधिकार
पाते विज्ञान से कर अनुकूल व्यवहार

मनवांछित ऐश्वर्यों को पाते फिरते

॥ऋत की॥

प्रभु की ऋत शक्ति नष्ट हो, सम्भव कैसे?
न प्रकाश बने तम, अग्नि में गुण हैं जैसे
वैज्ञानिक भी ऋत सत्य के वश में रहते

॥ऋत की॥

कोई चाहे तो भी जिह्वा देख ना पाये
चख सके ना आँखें कान बोल ना पायें
भौतिक-चेतन तत्व ऋत विधान से चलते

॥ऋत की॥

अनृत आचरण से कष्ट क्लेष ही होते
ऋत विमुख जो होते पाप जीवन में ढोते
ऋत के चिन्तन से भक्त प्रभु को वरते

॥ऋत की॥

ऋत के मन्त्रों का जो भी उच्चारण करते
ज्ञान और अभ्यास से वो ऋतमान ही बनते
ऋत समझाये तो बहिरों के कान भी खुलते

॥ऋत की॥

ऋतवादी का जीवन ऋतमय हो जाए
पुरुषार्थ संयम से ऋतव्रती होता जाए
ऋत के ही उपासक सत्य मार्ग पर चलते

॥ऋत की॥

(ऋतमान) नियम पर चलनेवाले (ऋतवादी) सत्यवादी (अमृत) जो मरता नहीं, अमरता।

133. सर्व औषध रूप प्राण

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे॥

ऋ. 10. 137. 3

तर्जः *घनश्याम वृन्दारण्यं क्रास केडे*

हे प्राण वायो। तुम सर्व औषधरूप हो,
सर्व औषधियों में तुम ही तो मौजूद हो
मै करूँ सेवन तुम्हारा तुम ही शक्त्याकूत हो॥
॥हे प्राण वायो!॥
चल रहे अन्दर हमारे देवदूत ही बन के तुम
सारे देवों के संदेशों को सुनाते हो तुम स्वयं
हम रहे कैसे अभागे ना करें सन्देश-श्रवण
रहते हैं वंचित चिकित्सा से, के हम हैं मतिमन्द
किन्तु साधक भक्तों के हे प्राण! प्रेरणारूप हो (2)
॥हे प्राण वापो!॥
श्वास और प्रश्वास से मल रोग सारे दूर हों
इन प्राणापान के नियमन में हम परिपूर्ण हों
सारी औषधियाँ लिये उपचार करते हो वैद्य बन
मैं तुम्हें बाहर क्यों खोजूँ हे मेरे प्राणाभरण,
प्राणप्रद हे आश्विनौ! अंतस् के तुम देवदूत हो (2)
॥हे प्राणवायो!॥
प्राण रूप प्रभु हमारे प्रेरणाएँ बन के आओ
पृथिवी, अप, तेजादि देवों के संदेशों को सुनाओ,
देह की गति चेष्टाओं को सुखद नियमन में चलाओ,
हे नियामक वात! देहात्मा के दोषों को हटाओ
जो तुम्हारे हैं उपासक उनके जीवन व्यूढ़ हों (2)
॥हे प्राणवायो!॥
खान-पान और आच्छादन प्रकृत-प्रेरणाएँ भरें
तुमसे प्रेरित देवों के सन्देश-वचन सुना करें

आचरण तद्रूप करके रोग कष्ट से हम बचें
रहो आसन्न वैद्य बन, हे प्राण प्यारे! हे ऋते!
प्राणापान के दिव्य स्वरों में तुम सदा अनुभूत हो (2)
॥हे प्राण वायो!

(शक्त्याकूत) शक्तिआकूत, शक्ति का अभिप्राय (श्रवण) सुनना (मतिमंद) मंदबुद्धि (प्राण भरण) प्राण स्वरूप भरण पोषण करने वाला (आश्विनौ) प्राण स्वरूप (व्यूढ़) विकसित, खिला हुआ (प्रकृत) असली, स्वाभाविक (तद्रूप) वैसा ही, अनुरूप (आसन्न) निकट, पास (अप) जल, पानी

134. परम यज्ञ पुरुष की कृपा से बन्धन मुक्ति

ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः
यज्ञं यद्यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम॥

अथ. 6. 114. 2

तर्जः *धर दो धांचे धरकूल पाखरांचे*

हे आदित्यो! (2)
खोलो बन्धन हमारे

मैं यज्ञ करना चाहूँ पर फिर भी कर न पाता, (2)
मैं चाहूँ स्वार्थ तजना पर लोभ आ सताता,
विषयों के वश में होके (2) सत्कर्म गये विसारे॥
॥हे आदित्यों॥

या राष्ट्र यज्ञ होवे या सेवा यज्ञ होवे (2)
या धर्म यज्ञ में निज आहुतियाँ छोड़ें
मन चाहता बहुत है (2) पर हाथ पैर हारे॥
॥हे आदित्यों॥

हे देवो! बद्ध अवस्था से मुक्त कर दो मुझको (2)
देवत्व को जगा दो ज़रा बदलो मेरे रुख को,

कर दो समर्थ आत्मा (2) चलूँ ऋत के ही सहारे
॥हे आदित्यो॥

यज्ञों का यज्ञ ऋत है सत्यों का सत्य ऋत है (2)
बन्धन खुले इसी से यज्ञों का फल अमृत है
बस देर है यही के (2) प्रीतम प्रभु पधारें॥
॥हे आदित्यों॥

इक मात्र सत्य वस्तु, है परम यज्ञ-पुरुष (2)
ऐश्वर्यमय है जिसका ब्रह्माण्ड यज्ञरूप
हर देव उसका याज्ञिक (2) संसार जो सँवारे॥
॥हे आदित्यों॥

किसी सत्य के लिये ये प्राणों की आहुति तुच्छ (2)
ये सत्य ही अमिट हैं, बाकी मिटेगा सब कुछ
हे प्रकाशमय सुकर्मों (2) हृदय बसो हमारे॥
॥हे आदित्यों!॥

जब जब रहूँ अशक्त, रुक जाऊँ यज्ञ-पथ से (2)
तब तब स्मरण करा दो याज्ञिक ये कर्म ऋत के
हे यज्ञवाहक देवो (2) बन्धन हटाओ सारे॥
॥हे आदित्यों॥

(ऋत) नियम (यज्ञवाहक) यज्ञ को चलाने वाले

135. दुष्कर्मी सन्मार्ग की नहीं तर सकते

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छलोक यन्त्रासो रभसस्य मन्तवः।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः॥

ऋ. 9. 73. 6

तर्जः *घर थकले सन्यासी*

स्वर्गीय गान की सुस्वर लहरें सुनकर मनवा हरसे,
और दिव्य प्रकाश की किरणें चहुँ ओर से सम्यक् बरसे॥
॥स्वर्गीय॥

कुछ और नहीं ये ऋत हैं जो ताल स्वरों में बजते
ये दिव्य शब्द और किरणें द्युः लोक से आतीं उतर के॥
॥स्वर्गीय॥

निर्माणोंत्पत्ति स्थान हम सबका रहा सनातन
बस इस अनादि ब्रह्माण्ड में मधु वीणा स्वरित स्वर सृजते॥
॥स्वर्गीय॥

ये वीणा है प्रभु-वाणी जहाँ श्लोक ईक्षण की शक्ति
यही रश्मियाँ वेगग जग में चलती रहती सतत् से॥
॥स्वर्गीय॥

चैतन्य सर्वगत प्रभु के मधु स्पर्श से जागृत होती
जो लोग निबद्ध स्वरो में तन मन बुद्धि से निखरते॥
॥स्वर्गीय॥

पर दुःख हैं अन्धा बहरा जग सुने ना स्वर वीणा के
अन्धा धुन्ध आपाधापी के स्वर हैं विवादी व्यथित के॥
॥स्वर्गीय॥

प्रतिकूल कर्म जो करते उन्नति पथ पे नहीं बढ़ते
जीवन दुःखदायी समेटे इत उत त्रस्त तड़फड़ते॥
॥स्वर्णीय॥

आओ खोलें निज कर्ण और अन्तस नेत्र-दृष्टि
प्रमु धाम के दिव्यस्वरों के स्वरभाव समाहित प्रगटें॥
॥स्वर्गीय॥

(सम्यक्) पूर्ण (ऋत) सृष्टि नियम (ईक्षण) देखने की शक्ति (वेगग) वेगवान (आपाधापी) निज स्वार्थ के लिये प्रयत्न करना (त्रस्त) सताया हुआ (तड़फड़ना) अशान्त होना

136. हे वज्र वाले

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ। तवेदु स्तोमं चिकेत॥

ऋ. 8/2/17 अ : 20/18/2 साम. 720

तर्जः *चक्रवाक पक्षी वियोगी*

हे प्रभु परम मंगलकारा
शुभ कर्मो के पहले नाम लूँ तुम्हारा
॥हे प्रभु॥

कार्य का मङ्गलाचरण करूँ नमन से
मनोरथ करूँ पूरे मनस्विन् मन से
संकल्पों का लिया सहारा
॥हे प्रभु॥

अनिष्ट अमंगल विघ्न दूर करता
पापघ्न-वज्र का धारण कर्ता
तुझ अनन्य की स्तुति बिन ना किनारा
॥हे प्रभु॥

आश्रय पा तेरी शरण जो आता
पराजय असिद्धि विफलता ना पाता
मंगल हो मिलता सुख सारा
॥ हे प्रभु॥

छोटे बड़े सब तेरे पुतले
दीन धनी सबकी तू सुध ले
कभी किसी को नहीं विसारा
॥हे प्रभु॥

जो पाया सब तुझ पे समर्पित
स्तुति भाव मैं करूँ प्रदर्शित
एक तू ही जो बने सहारा
॥हे प्रभु॥

आँचल तेरा थामना चाहूँ
निष्कामी बन शरणी आऊँ
ओइम् नाम हृदय में धारा
॥हे प्रभु॥

(पाप-वज्र) पाप नाशक अस्त्र (अनन्य) सबसे अलग

137. सबका आनन्द दाता

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा॥

ऋग. 1. 25. 15

तर्जः *चन्दन तिन्निलाय मिट्टिट निलिट्टीसुम*

देखो प्रभु कृपा, रहे ना भूखे हम
उदरों को देता है अन्न-भोजन
करे रक्तोत्पन्न, होते क्रियाशील
अन्नों से होते, पुष्ट अङ्ग-प्रत्यङ्ग (2)

॥देखो प्रभु कृपा॥

निर्माण अन्नों का विविध प्रतिपन्न
कैसा ये सुन्दर आचक्र क्रम
अन्न भोग्य सामग्री भरपेट दीनी (2)
कितने भी जन हो पड़ता नहीं कम॥
वाह मेरे भगवन्! वाह अनुपम!॥

॥देखो प्रभु कृपा॥

भाँति-भाँति के शाक फल फूल कन्द
देते हैं स्वाद, तृप्ति आनन्द
यदि ये मानव समाज, बाँटे यथोचित (2)
भूखा रहे ना कोई बिन भोजन
अन्न तो मात्र है उपलक्षण॥

॥देखो प्रभु कृपा॥

ऐ मेरे आत्मन् आजा प्रभु शरण
दूर ना होवें पोषक भगवन्
अनगिन मङ्गलों की, देख प्रभु वृष्टि (2)
किसी ओर से ना कभी कम
कर इसका चिन्तन व मनन॥

॥देखो प्रभु कृपा॥

(उपलक्षण) देखभाल, समस्त वस्तु के लिये किसी एक भाग का कथन (प्रतिपन्न) पूर्ण रूप से (यथोचित) जैसा चाहिये वैसा

138. आलस्य प्रमाद-त्यागपूर्वक यज्ञ

इच्छिन्ति देवाः सुन्वन्त न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥

ऋग. 8. 2. 18. अथ. 20/18/3 साम. 721

तर्जः *चन्दीने तुडदिया आस्वादा सतिगया–*

शत्रु बड़ा मानव का, है आलस्य है यही पाप-दुःख का कारण (2)
आत्म-हनन से करता विनाशन (2)
राह में लाभप्रद अवसर आते (2)
अकर्मन् उन्हें छोड़ जाते
आत्म कल्याण से वञ्चित रहते
जीवन अपना विरस बनाते
देवों के द्वारा उन्हें सृष्टि यज्ञ से
ना सुख ना प्रतिदान ही पाते
देव ही बतायें
प्रभु के अवगति-नियम॥

॥शत्रुबड़ा॥

सृष्टि-नियम परिपूर्ण ईश्वर के (2)
सब अनुशासन चलें भीतर से
अनुचितता भूल अपराधों से
पाते हैं दण्ड निहित परिसर से
ये व्यथा वेदना ये मृत्यु दुःख रोग
है शिक्षा रूप सब जीव-कर्म-भोग
है प्रकष्ट शासन ना करो उलंघन॥

॥ शत्रुबड़ा॥

प्रभु के देव सब सर्वथा अतन्द्र (2)
इन सब में बसे हैं सत्येन्द्र
सत्त्वगुण पाके बने हैं सुभद्र
रज-तम् से है परे, प्रवर विनम्र

आलसी रोये अभीष्ट को खोकर
इसलिये खाये बारबार ठोकर
दण्ड पाके लग जाता जीवन में प्राजन

शत्रुबड़ा॥

सृष्टि यज्ञ के भाव जगाये
देवों जैसे कर्म कमाये
यज्ञिय कर्म ही अति सुख लायें
मानव रूप चरित्र बनाये
दिव्य-जतन कर ले ऐ मानव
आलस छोड़, ना बन तू दानव
देव तुल्य मानव करते हैं सोम-सवन

(आत्म हनन) आत्मा को मारना (अकर्मन्) आलसी (अतन्द्र) आलसी (वञ्चित) जुदा, अलग (विरस) अप्रिय, पीड़ा कर (प्रतिदान) वापस देना, भेंट (अवगति-नियम) सत्य और निश्चित ज्ञान के नियम (अनुचितता) अयोग्यता, अनुपयुक्तता (निहित) निश्चित (परिसर) नियम, विधि (प्रकष्ट) अडिग (उलंघन) न मानना, अवमानना (अतन्द्र) जो आलसी न हो, परिश्रमी (सत्येन्द्र) सत्यरूप इन्द्र (सुभद्र) सौभाग्यशाली (अभीष्ट) मनवाञ्छित (प्राजन) अंकुश, रोक (सोमसवन) सोम अमृत का पान

139. आराधना कर

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥

ऋ. 8. 69. 4 साम. 168, 1489, अथ. 20/22/4

तर्जः ***चाँद कुट्टले, चाँद कुट्टले राग जयजयवंती***

इन्द्र शरण दे, पाप हर ले
जिससे सत्य ज्ञान की ज्योत जले॥

मन इन्द्रियाँ क्या ज्ञान दे सकें
उलटा भ्रामक ज्ञान ये उत्पन्न करे
तर्क या कुतर्क या राग द्वेष से
मन मलिन होके दुःख कष्ट में घिरे
उलझन, कहो क्यूँ बढ़े
क्यों न ज्ञान की आत्मा में खोज करें॥

॥इन्द्र शरण दे॥

इन्द्रियों का स्वामी, है इन्द्र देव
मन इन्द्रियों का जो है आधेय
इनको साधन बनाता है सत्यदेव
क्यों न श्रेयात्मा की पूजा करें॥

॥इन्द्र शरण दे

पूज सत्य देव को सत्य वाणी से
सत्य व्यवहार कर हर प्राणी से
मनोमय वाणी माँग अन्तर्यामी से
क्यों न सत्य का चिन्तन मनन हम करें!

॥इन्द्र शरण दे॥

साधना तू पूरी कर, बन जा 'सत्पति'
मिले प्रभु द्वारा ऋतम्भरा बुद्धि
हो प्रकाशित ज्ञान से बन जा सुधी
सत्य का तू पुत्र मानव क्यों ना बने?

॥इन्द्र शरण दे

(आधेय) दिया जाने वाला (सत्पति) साधुओं का पालन कर्ता (सुधी) बुद्धिमान

140. प्रभु की प्राप्ति

१२ ३ २ ३ १ २३२१ ३ १ २१३२ २ ३ २ ३२३ ३ १ २
सदा व इन्द्रश्चर्कृपदा उपो नु स सपर्यन्। न देवो वृतः शूरः इन्द्रः॥

सा.पू. 196

तर्जः ***चान्दण्यात फिरताना माझा***

हृदय में ईश्वर के प्रेम का क्यों है अभाव?
हरि कथा होती जहाँ वहाँ से क्यों, जाते भाग? (4)

प्रभु चर्चा बार बार होती देख ऊबते हो
अन्य विषयों के लिये तो लालायित रहते हो (2)
पिता से ना जाने क्यों है पुत्र की दूरी आज (2) ॥हृदय में॥

चाहे जो मनमानी करो चाहें देव तुम्हारा हित
कर रहा है प्रेम से वो अपनी ओर आकर्षित
जानो ना जानो तुम्हें खींचे सतत् विश्व राज (2) ॥हृदय में॥

रोम रोम में रमी है प्रीत जैसे मित्र की
मात-पिता सम करे परिचर्या अपने पुत्र की (2)
प्राणों को करता अनुप्राणित, रहता पास (2) ॥हृदय में॥

आत्माओं में देता है चिन्तन भी तद्रूप
वात्सल्य सुख सेवा विश्राम देवे प्रभूत
दान कोई दे या ना दे पर वो देता है अबाध (2) ॥हृदय में॥

ना केवल खींच रहा पालन पोषण भी करे
दुःख निवारे रक्षक बन सेवा भी अति करे
वो है पिता हम सुपुत्र बीच में ना अरात (2) ॥हृदय में॥

क्यों ना उसका प्रेमाकर्षण जाने पहचाने
होवे आभास जैसे बैठा वो सिरहाने
अनुभूत करो जैसे ईश खड़े हैं साक्षात (2) ॥हृदय में॥

(परिचर्या) सेवा (तद्रूप) उसी तरह (प्रभूत) प्रचूर, अत्यधिक (अबाध) बिन बाधा के (अरात) शत्रु (अनुभूत) आभास, अनुभव

141. सूर्योदय

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति, दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता, अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि॥

ऋ. 7. 63. 4

तर्जः ***चिनग चिनग चिनगा मदी कन्नलु वित्तिना कन्निगा***

प्राची में सूर्य चमका हित हो गया जन जन का॥
है दृष्य कैसा मनमोहक, बन गया है ये प्रेरणाप्रद॥

प्राची...

धरती आकाश पे फैला हुआ तम
ज्योति की किरणों से देखा हुआ गुम
रात्रिचर जीवों का हो गया पलायन
पशु पक्षी मानवों में जागी उमंग
ज्योति की किरणों ने पाया विस्तार
दूर दूर तक दिखने लग गया संसार
द्युलोक का ये सूर्य स्वर्ण मुकुट है
आधि-व्याधी रोगों का सूर्य विरुज है
ये सौर जगत् का है संचालन रूप
विस्तीर्ण दृष्टि का है दाता अनूप
सूर्य तरणी है आकाश सूर्य का
है परमेश्वर का दिया देवता॥

प्राची...

सूर्य चाहे जलती हुई गैसों का पिण्ड
किन्तु विवेकी जन पाते इससे इंग
मानस पटल पे करते उदित आत्म सूर्य
पाते उदार दृष्टि और पाते वीर्य
जीवन में उच्च लक्ष्य लेते हैं चुन
संतारक बनके लेते रश्मियों के गुण
क्रिया निष्ठ कर्म करके बनते कर्मण्य

दायें हाथ कर्म बाँयें हाथ विजय धन्य
वो करते हैं मुखरित वैदिक उत्साह को
बढ़ते कदम हैं दर्शाते उद्भाव को
आओ उदित करें अन्दर सूर्य को
लक्ष्य प्राप्ति हेतु हम धारें ऊर्ज को॥

(विरुज) निरोग (उर्ज) शक्तिमान (अनूप) अनुपम, सुन्दर, उत्तम (तरणी) नाव, पार लगाने वाली (इंग) हृदय का भाव (वीर्य) बल, शक्ति, पराक्रम

142. जिसका दर्शन अति भद्र और चारू है

भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३ रेप आ धुः॥

ऋग. 4. 6. 6.

तर्जः *चिन्य पूवुगळ पुन्न कुडक्कण मील करुवी कड़े*

दिव्य दर्शन दे दयामय दोष दुरित दहें (2)
सुन्दर ज्वालामय! इकटक निहारते हैं तुम्हें
होता प्रकाशित हृदय मेरा तेरे चारु संदर्शन से
तेरी ज्योति को तम ढक ना सके॥
॥दिव्य दर्शन॥

ऐसा तू है अद्भुत! रहता है तू उद्बुद्ध
घोरता चारुता है जो तुझमें लगते हैं दोनों विशुद्ध
घोर विषम भी तू ही भद्र चारु भी तू ही
हैं ये परस्पर दोनों विरोधी, तेरे लिये हैं अविरुद्ध
दुष्टों की दुष्टता हो जाती क्लान्त
तुझमें समाते ही हो जाते शान्त
बड़े बड़े विध्वंसक लोग भी, हाथ अपने मलते ही रहे॥
॥दिव्य दर्शन॥

हे अग्ने तू है भद्र, तेरी भद्रता पे हैं मुग्ध
ज्योतिष्मती ज्वाला, निर्दोषता पर हो रहे आश्चर्य युक्त
ऐसे ही अंतःकरण में ज्वालायें तेरी चमकें
आत्मिक अग्नि से मन बुद्धि प्राण ज्ञान-कर्मेन्द्रियाँ दमकें
स्फूर्ति जगाते हैं प्राण
निश्चय करती बुद्धि काम
श्रोत चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ भी ज्ञान के ही तो साधन बनते॥
॥दिव्य दर्शन॥

पाप-दुरित जब आए हिंसा दुःसंकल्प जगाये
उस वक्त आत्मग्नि होती विकराल विद्युत बन इनको जलाये
विकरालता विषमता लगती मनमोहिनी
तब काम क्रोध मोह लोभादिशत्रु आत्मा से दूर हो जाएँ
दोष मालिन्य हो जायें नष्ट
जिससे आत्मा पाये ना कष्ट
जगमगाते रहो हे आत्मन्! अद्भुत ज्योतियाँ मनमें बहें॥

(चारु) सुन्दर, मोहक (उद्बुद्ध) खिला हुआ, जागा हुआ, चैतन्य (क्लान्त) थका हुआ, मुरझाया हुआ (विकराल) भयंकर (विषम) भयंकर

143. भोग साधन पहले बनाता हूँ

दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।
असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि॥

ऋ. 8. 100. 2.

तर्जः *चिम्बग तईगड़पूत मानत कुनम्बिल*

—आत्मा—

सम्मुख तेरे मैं आया हूँ हे इन्द्र!
आई इन्द्रियाँ पीछे,
भाग भोग्य का दे,
पाप भी नष्ट कर दे (2)

॥सम्मुख तेरे॥

—ईश्वर—

भाग तेरा तेरे लिये रखा है, हितकारी
सोम इसे पहले बनने दो ऽ ऽ
तू मेरा होके मित्र दाहिनी ओर आ तो
दोनों मिल पाप देंगे, धो ऽ ऽ (2)

॥सम्मुख तेरे॥

पाप के नाश हेतु (यदि) चाहे जो मदद मेरी
बना करण मेरा, खुद को ऽ ऽ (2)
अहंकार ममकार त्याग के आजा
हथियार मेरा बन तो ऽ ऽ (2)

(सम्मुख) सामने (दाहिनी ओर आना) अवगुण त्यागना (करण) साधन (ममकार) मैं मैं करने वला (अहंकार) घमण्ड (हथियार) कोई काम करने की वस्तु (पुरुषार्थी)

144. मीठे आँसू

जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम्॥

साम. 15. ऋग. 1. 27. 10

तर्जः *चिम्बग में चिम्बग में चन्दन ते चन्दिर नेः*

जीवन में यज्ञ करें
स्तुति-वृत्ति का सख्य करें
मेरे मन ने धारण कर लिया
इक सतत् स्तोत्र का रूप, अरे।
मेरा मन विश्व में और अङ्ग अङ्ग में
अग्नि ही देखा करे॥ ॥जीवन में॥

मेरे इस स्वरूप को अग्निदेव करते बहुत पसन्द (2)
मेरी स्तुति से अग्निदेव हैं देखो कैसे प्रसन्न (2)
अधिक प्रदीप्त हुए प्यारे अग्निदेव!
स्तुति मेरी कर दी अत्यंत तेज
हे प्रभो! स्तुत्य देव! हे अध्वरे! ॥जीवन में॥

मेरा ये स्तोत्र अग्नि-ज्वाला बन जाने को है उत्सुक (2)
इसीलिये तो वेदो में स्तुतिगान की महिमा है अनूक्त (2)
अग्नि की उपासना से अग्नि थे अङ्ग
उज्ज्वल स्वरूप बना मिला जब संग॥
हे प्रभो! स्तुत्यदेव! हे अध्वरे! ॥जीवन में॥

तुम प्रविष्ट हो रहे हो अंतःकरण में जब से (2)
अनुभव मैं भी इसे करता जा रहा हूँ तब से (2)
जितना उठाऊँ स्तोत्र भाव अधिक जागे
गान स्तुति का चमक उठे
हे प्रभो! स्तुत्यदेव! हे अध्वरे!॥ ॥जीवन में॥

हे परम पूजनीय! निज प्रवेश है यज्ञिय तुम्हारा (2)
नस नाडी तन मन वाणी में आचरण तुमने निखारा (2)

यज्ञ भाव के आसु आवेश में
मननाग्नि का आदेश दे
हे प्रभो! स्तुत्यदेव! हे अध्वरे! ॥जीवन में॥

परम पूजनीय हृदयहारी मनमोहक देव प्यारे! (2)
बात आखिर क्या है क्यों रोज़ तुम्हें याद करें सारे (2)
होता मुझे ज्ञात तब
तुझमें मैं हूँ मुझमें तुम रब
हे प्रभो! स्तुत्यदेव! हे अध्वरे!॥ ॥जीवन में॥

ऐसे प्यारे अनुभव में भावुक नैन मेरे भीग जाते (2)
तुम भी मेरे तनमन को निज प्रकाश-झरोखा बनाते (2)
मीठा आतंक तन-मन पे छा जाता
तेरे संस्पर्श का आनन्द आता
हे प्रभो! स्तुत्यदेव! हे अध्वरे! ॥जीवन में

इन छलके नैनों से पाप-दोष बह गये हैं सारे (2)
दोष प्रक्षालन की इस क्रिया में सधे हैं हाथ तुम्हारे (2)
मधुर मिलन मेरा व्याकुल रोता
यज्ञिय रोदन मीठा होता
हे प्रभो! स्तुत्यदेव! हे अध्वरे! ॥जीवन में॥

रूद्ररूप तेरा है यज्ञिय रूप हे 'जराबोध'! (2)
दर्शनीय स्तोत्र भेंट ले लो। अग्निदेव! है अनुरोध (2)
मेरे मीठे अश्रु ही मेरे मीठे स्तोत्र हैं
ज्वाला से उद्‌बुद्ध ये अग्निहोत्र है
हे प्रभो! स्तुत्यदेव! हे अध्वरे! ॥जीवन में॥

(सख्य) मित्रता (स्तोत्र) वेदों का स्तुतिगान (अध्वर) यज्ञ (आसु) शीघ्र (आवेश) आन्तरिक यत्न (आतंक) उपद्रव, (झरोखा) ताकने की छोटी खिड़की (प्रक्षालन) शुद्ध करना, स्वच्छ करना (सधना) ठीक नापा जाना, सिद्ध करना (रोदन) रोना, (जराबोध) स्तुति वृत्ति को जगाकर हमारी स्तुतियों द्वारा स्वयं अधिक जगने वाला (दर्शनीय) सुन्दर (उद्‌बुद्ध) जागृत, खिला हुआ

145. सोमरस आत्म-कलश में प्रवेश कर रहा है

१ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २३१ २
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि१ २
१ २ ३१ २ ३ १ २३ २ ३ ३ २३ ३ ३ १२।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति

साम. 1371

तर्जः *चिरगान वौनम चिरि इल्लु तुन्नी*

चिरगान की तरंगें, बनी सोमामृत की धारक
हे सोम प्रभुजी आत्मा तेरे चरणों में हुआ आनत
पुलकित हुआ है ये मन मधुर सोम रस को पाकर
उद्बुद्ध हुई सब शक्तियाँ बरसा आनन्द का शारद॥
संयुक्त हो गई है मनन शक्ति मुझसे
हुआ सिक्त अङ्गअङ्ग मधुसे, बना सोम मन का मादक
चिरगान की...

सोम ओषधी को जैसे कूट पीस छाटें छाने
छने हुए सोम रस का करें पान और ये जाने
मनन शक्ति बुद्धि पाती मधुरता भी लगती समाने
लाता है आध्यात्मिक रस ही मस्ती जिया में
रसागार परमेश्वर ही रहते है सोम से भावित
ध्यानरूप कूंडी सोटा कूटके निकाले रस भावक॥
चिरगान की...

आओ हम बनायें मिलके दिव्यता का सोम रस
खुद भी पियें और औरों को भी पिलायें
इस रस में भौतिक चेतना मिलायें, ना मलिनता
पवित्र मन की छन्नी से इसे छान कर बनायें
पहुँचा के आत्मकलश में मस्त हो जायें
मस्ती में गीत प्रभु के गाये जिह्वा बनके गायक॥
चिरगान की...

(आनत) विनय से झूका मुख (शारद) सफेद कमल, (संयुक्त) जुड़ हुआ (भाविक) जिसमें रस की भावना दी गई हो (भावक) भाव से भरा।

146. अग्नि प्रभु को मथो, सम्मुख प्रकट करो

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम्॥

ऋ. 3. 29. 5

तर्जः *चिरगान वौनम चिरियिल्लु तुम्मी मनसम मदम्नी*

—भजन—

जो प्रभु की मोहनी छवि देख लेते हैं
ललित मोहन प्रभु पर, सदा मुग्ध रहते हैं
लौकिक छवियाँ फिर उन्हें करतीं ना मोहित
प्रभु के ब्रह्माण्ड यज्ञ से प्रेरणा वो लेते हैं॥

॥जो प्रभु की॥

जैसे दधि को बार बार मथते, आता है तैरकर उपर मधु-माखन
वैसे ही अग्रनेता तेजस्वी प्रभु को, हृदयपात्र में मथकर पाते हैं आनन्द
मन की मथानी से मथ लो प्रभु को, चिन्तन मनन निदिध्यासन साधक करते हैं॥

॥जो प्रभु की॥

आत्मा से उसका करो साक्षातकार, मिलेगा ब्रह्मानन्द रूप नवनीत निर्मल
प्रभु क्रान्तदृष्टा है वेदों के काव्य से, बनाते उपासक को क्रान्तदर्शी विमल
नीरस को करते हैं सरस सच्चिदानन्द, दुःख रूप निराशी में वो आनन्द भरते हैं॥ ॥जो प्रभु की॥

भाव हीन को करते भाव विभोर, कर्तव्यरहित को करते कर्तव्यपरायण
प्रभु अद्वयन हैं दोहरी चाल ना चलते, प्रकष्ट चित्त वाले भगवन् प्रचेता हैं पावन
है प्रभु अमृत, सबको बाँटते हैं, अमृत, सत्य शिव सुन्दरम् साधक को करते हैं।

॥जो प्रभु की॥

ऐसे अग्निदेव को प्रकट करें हृदय में, ऐसे अग्रनेता के बने अनुगामी हम
प्रभु हैं सुशेव सबसे बढ़कर सुखी हैं, अन्यों के प्रभु सुखदायक करते प्रसन्न
आओ मनुष्यो! प्यारे अग्नि-प्रभु को, हस्तामलकवत देख के साक्षात्कार करते हैं॥

॥जो प्रभु की॥

(ललितमोहन) सुन्दर मनमोहक (अद्वयन) दुभाँति न करने वाले, दोहरी चालन ना चने वाला (सुशेव) सुसुखी एवं सुखदाता (हस्तामलकवत) विषय को भली प्रकार जानकर करना (क्रान्तदर्शी) सर्वज्ञ

147. अपने आत्मा की पहचान

स स्तोभ्यः स हव्यः सत्याः सत्वा तुविकूर्मिः। एकश्चित्सन्नभिभूतिः॥

ऋ. 8. 16. 8

तर्जः *जन्मत हातुर साथ पियारे*

जग में तू अवतीर्ण हुआ है
जान ले कर्म की गति
महान-लक्ष्य में लीन हुआ है॥
रहे स्थितप्रज्ञ की स्थिति॥

जग में...

निज आत्मा तू पूज्य बना ले, गुणवर्धन स्तुतिरूप सजा ले (2)
और आत्मा का आह्वान कर (2) आत्मा हो सत्यव्रति॥

॥जग में॥

दोष यदि आ जाये सताने, या कुमार्ग पर लगे चलाने (2)
दूर भगा दे उसे हे आत्मा! (2) तू है 'तुविकूर्मि'॥

॥जग में॥

दूभर काम की तुझमें क्षमता, बहुकर्मों की है अनवरता ॥2॥
ना आवे कभी आत्म-हीनता (2) आत्मा की कर स्तुति॥

॥जग में॥

मार्ग में बड़े बड़े संकट हैं, सुपथ दीखता बड़ा विकट है (2)
सर पे यदि तलवार है पैनी (2) पर ना डरना कभी॥

॥जग में॥

निज शक्ति पहचान ले आत्मा, उन्नत हो कर प्रभु-प्रार्थना (2)
तेरे चरण सफलता चूमें (2) बन जा तू उद्यमी

॥जग में॥

(आह्वान) पुकार (तुविकूर्मि) बहुत कर्म करने वाला (अनवरता) श्रेष्ठता, उत्तमा (याजक) यज्ञ करने वाला (उद्यमी) परिश्रम करने वाला।

148. ग्लानि और तन्द्रा मुझसे दूर रहे

न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत्॥

ऋ. 2. 30. 7.

तर्जः *जन्मम सफलम, इन श्री रीगयिल स्वप्नम् मलरा*

प्रतिदिन अभिषुत करता हूँ मैं सोम
अर्पित करता हूँ भक्ति में रोम रोम
जिसमें ज्ञानकर्म की सोमवल्ली को
कूट के बनाया रस सोम॥

प्रतिदिन...

अर्पण है ये रस इन्द्र को, प्रहृष्ट मुझपे हैं वो
कर देते पूर्ण मनोरथ को वो, चाहिये और क्या कहो?
सत्य अभिलाषाएँ होती जो मन में इन्द्र सिवा भला जानेगा कौन

प्रतिदिन...

यज्ञ तप स्वाध्याय सत्य ब्रह्मचर्य, अहिंसा यश वर्चस ज्ञान
अद्‌भुत अभीप्साएँ होती हैं जागृत जिन्हें करता पूर्ण भगवान
करता प्रदान मुझे बोध व जागृति खोई गौओं का होता अगौन

प्रतिदिन...

दे दो धेनुएँ तृप्तिदायिनी काम दुधाएँ लाओ समीप
भक्ति सोम रस से हो जाऊँ परिपुष्ट, हरो ग्लानियाँ हे जगदीश
पथिप्रज्ञ बना के सन्मार्ग में लाओ, कर दो कर्तव्यों में प्रौण॥

प्रतिदिन...

ज्ञान-कर्म-भक्ति-सेवा का सोम रस मुझको कराओ अभिषुत
आत्म कल्याण और परकल्याण का सोम सवन है अद्‌भुत
ऐसे ही सोम सवन के लिए ही आओ करायें गौओं का गौन।

प्रतिदिन...

(अभिषुत) सींचा हुआ (सोमवल्ली) सोमलता (जिससे सोमरस प्राप्त होता है) (प्रहृष्ट) अत्यंत प्रसन्न (वर्चस्) तेज (अभीप्सा) इच्छा, अभिलाषा (दुधाएँ) दूधवाली, (हृष्टपुष्ट करने वाली) (गौऐं) इन्द्रियाँ (अगौन) आगमन, आना (धेनुएँ) गौऐं (इन्द्रियाँ) (पथिप्रज्ञ) राह जानने वाला (सवन) यज्ञ स्थान, होशियार, (गौन) गमन, प्रस्थान

149. आत्म शुद्धि द्वारा सर्व बिधैश्वर्यं प्राप्ति

इन्द्रं शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि॥

ऋ. 8. 95. 9. साम. 1404

तर्जः ***जयजय दुर्गे शुभकरे***

हे परमेश्वर शुभंकरे! हे परमेश्वर शुभंकरें!
अपार ऐश्वर्यों के दाता
फिर बाहर क्यों हम भटकें?
॥हे परमेश्वर॥
सारे अनिष्ट वारने वाले (2) सब अभीष्ट दे सकने वाले
आत्मा में विद्यमान यथावत (2) दर्शन आत्माराम करे
॥हे परमेश्वर॥
आत्म विशुद्धि प्राप्त करें हम (2) साधना तप से हटें सकल तम
विषय-वासना राग-द्वेष तज (2) सुख-अभीष्ट हम माँगे तुझसे
॥हे परमेश्वर॥
विशुद्ध आत्मा जो कुछ माँगे (2) तुम उसको प्रभु सुभग बनाते
परिपूरित तव कृपा बरसती (2) हृदय में हर्ष आनन्द भरे॥
॥हे परमेश्वर॥
दानशील निस्वार्थ विधानी (2) परमेश्वर का बन अनुगामी
निःसंदेह वो प्रभु का प्यारा (2) पूजित धन वो प्रभु से ले॥
॥हे परमेश्वर॥
परम विशुद्ध इन्द्र तुम आओ (2) कष्ट विघ्न बाधाएँ हटाओ
सर्वश्रेष्ठ शुभ 'वाज' दिलाओ (2) अन्तस अनुभव तुझे करे॥
॥हे परमेश्वर॥

(अनिष्ट) बुरा, अहितकर (अभीष्ट) मनचाहा (परिपूरित) परिपूर्ण, सर्वथा पूर्ण ('वाज') धन ऐश्वर्य बल (अंतस्) अन्तःकरण

150. मेरी वाणीयाँ तो इन्द्र के गीत गा रही है

शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम्॥

ऋग. 3. 51. 2

तर्जः *जरीया पुसून गेल्या*

महिमा हे इन्द्र! गाऊँ, तुझे अग्रणी बनाऊँ
चरणों में सर नवाऊँ, तेरी शरण ही पाऊँ

॥महिमा॥

तू इन्द्र शतक्रतु है शुभकर्म युक्त कर दे,
तू शक्तिपुञ्ज है प्रभो! मुझमें भी शक्ति भर दे
हे प्रज्ञावान प्रेरक तुझसे ही ज्ञान पाऊँ

॥महिमा॥

तू इन्द्र शतक्रतु है शुभकर्म युक्त कर दे,
तू शक्तिपुञ्ज है प्रभो! मुझमें भी शक्ति भर दे
हे प्रज्ञावान प्रेरक तुझसे ही ज्ञान पाऊँ॥

॥महिमा॥

ये सूर्य चन्द्र गिरिवन सिन्धु व सरितायें
ये भूमि गगन ऋतुऐं, तेरी प्रज्ञा बतायें
अद्भुत हैं कर्म तेरे अचरज में डूबा जाऊँ॥

॥महिमा॥

पञ्चतत्वों की ये सृष्टि बनती विलीन होती
देहों में प्राण भरता, उसमें जगाता ज्योति
कारीगरी अनन्त क्या, क्या क्या प्रभु गिनाऊ?॥

॥महिमा॥

करुणा कृपा का सागर और सद्गुणों का बादर
तू विराट शक्तिशाली ज्योतियाँ करें उजागर
सन्मार्ग का तू नेता, तेरे पीछे चलता जाऊँ॥

॥महिमा॥

तू आत्मबल का दाता, भक्तों को अपनाता
और उनसे अपनी दूरी पल पल घटाता जाता
मुझ प्रार्थी को भी बल दो तुम तक पहुँच ही जाऊँ

॥महिमा॥

सरिता समान वेग, प्राणों को तू ही देता
जितने रिपु हैं सबका, तू ही है पराजेता
मैं तो तेरे आनन्द में, बस डूबता ही जाऊँ

॥महिमा॥

(अग्रणी) आगे ले जाने वाला (शतक्रतु) सैकड़ों प्रज्ञाओ एवं कर्मों से युक्त (बादर) मेघ, बादल (उजागर) दीप्तिमान प्रकाशक, चमकीला (पराजेता) जीतने वाला

151. हृदय से ज्योति को जानना

त्रिभिः पवित्रैर पुपोद्ध्य1र्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन्।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद्द्यावापृथिवी पर्यपश्यत्॥

ऋग. 3/26/8

तर्जः *जीवनात ही घडी अशीच राहू दे*

हे प्रभु हृदय में ज्ञान का प्रकाश दे
ब्रह्म प्राप्ति रूप सर्व श्रेष्ठ रत्न दे॥

आत्म शुद्धि का प्रयत्न सत्य कर्म है
ज्ञान के बिना कहो कहाँ सुकर्म है
आत्मज्योति ज्ञान की हृदय ही में मिले

॥हे प्रभु॥

नाश होते संशय सारे योगाभ्यास से
तीन आश्रमों में रहे जो प्रकाश में
माता पिता ज्ञानी गुरु से ज्ञान ही मिले

॥हे प्रभु॥

परमात्मा मन स्वात्मा का होवे योग
यज्ञ दान और तप से जले हृदय की ज्योत

धर्म के ये तीन स्तंभ मोक्ष धाम के

॥हे प्रभु॥

श्रवण मनन निदिध्यासन जीवन का ध्येय
मिल जाए ब्रह्मरत्न लागे ये जग हेय
रत्नधर्ता परमेश्वर बल सामर्थ्य दे

॥हे प्रभु॥

(श्रवण) सुनना (मनन) गहन चिन्तन (निदिध्यासन) गहरी समाधि, गहरा चिन्तन (यज्ञ) देवपूजा, संगतिकरण, दान (यज्ञ) के विभाग : ज्ञानयज्ञ, कर्मयज्ञ और उपासन यज्ञ (ज्ञानयज्ञ) ईश्वर, जीव, प्रकृति का ज्ञान (पुनर्जन्म, समाजोन्नति) (कर्मयज्ञ) आहार, विहार, शिक्षा, 16 संस्कार, भवन निर्माण, गणित, रसायन, भूगोल, यन्त्रादि ज्ञान, युद्ध विद्या और विज्ञान का ज्ञान (उपासना यज्ञ) सदाचार, शुद्ध व्यवहार, भक्ति, दया, योग, वैराग्य और समाधि का ज्ञान (जिससे परम आनन्द की प्राप्ति)

152. अभयकारी

यतो-यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥

यजु. 36/22

तर्जः *जीवलगा कदीरे येशिल तू*

हे परमेश्वर! अभय करो हमें
सुखद हो काल, ऋतु
हे सखे! अभय कर हमको तू (2)

समझ गये हम क्यूँ डरते हैं
याद तुम्हें नहीं किया करते हैं
आड़े आते स्वार्थ हमारे
ताकते पञ्चशत्रु॥

॥अभयकर॥

घटनायें सर्वत्र दिखी हैं
इसमें तुम्हारा हाथ नही है (2)
तुम हो केवल मङ्गलकारी
सदा दयालु मृदु॥

॥अभयकर॥

सम्यक चेष्टा करने वाले
हित सबका तुम चाहने वाले (2)
क्यों मन में लायें भय भीति (2)
सदा रहे ना मसू॥

॥अभयकर॥

जिस जिस स्थान काल कारण से
तुम निज संचेष्टन करते हो
वहाँ वहाँ निर्भयता ला दो (2)
हे प्रभु प्यारे हितु॥

॥अभयकर॥

दसों दिशाओं में तुम हो जाग्रत

बाँटी करुणा प्रेम दया हित
सर्वराज्य निर्भय हो जायें
अनुभावी हों मनु॥

॥अभयकर॥

निर्बल को कोई ना सतायें
पशुओं पर ना हाथ उठायें (2)
फैले चारों ओर ही शान्ति
दया भरे हों क्रतु॥

॥अभयकर॥

कोई भी निर्दयी ना होवे
प्राणीमात्र सब निर्भय होवें
जलचर पक्षी भावी सन्तति
निर्भय होवें पशु॥

॥अभयकर॥

ऐसी कृपा कर दो परमेश्वर
प्रेम की अनुभूति होवे अन्दर
राष्ट्र प्रजाओं के शंकर हों
तुम्हीं अभय के पटु॥

॥अभयकर॥

(सम्यक) पूर्ण, पूरा (संचेष्टन) सम्यक्तया चेष्टा करने वाले, (मृदु) कोमल (मसृ) कठिनाई (हितु) हित चाहने वाला (मनु) मनुष्य (हेतु) कारण (पञ्चशत्रु) पाँच शत्रु (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद) (शंकर) आनन्द दायक, (अनुभावी) प्रत्यक्ष ज्ञान रखने वाला (क्रतु) इच्छा, अभिलाषा, सङ्कल्प (पटु) दक्ष, निपुण

153. हे अन्नपते!

अन्न॑ पते॒ऽन्न॑स्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः॑
प्र-प्र॑ दा॒तारं॑ तारिष॒ ऊर्जं॑ नो धेहि द्वि॒पदे॒ चतु॒ष्पदे॑॥ यजु. 11/83

तर्जः *जोगिया से प्रीत किये दुःख होय*

सारे अन्न, बीज से उत्पन्न होय (3)
बीज अन्नों के स्वामी प्रभु तुम (2)
दानी तुमसा ना कोय सारे अन्न...
खाद्य चूस्य या पेय पदारथ (3) जो कुछ हमने बोय (2)
उन सबके दाता और रक्षक, तुझसा और न कोय॥
अन्न औषधि फूल या फल से, खेत खलिहान भी सोहे
सारे अन्न...
छालों से तुम इनको ढकते (3) चावल गन्ना गिलोय (2)
कई दिन तक ये सड़ नहीं पाते रक्षा इनकी होय
अन्न खाद्य वनस्पति आदि के हम तेरे याचक होय॥
सारे अन्न...
अन्नों से भर झोली कुठले (3) और कृपा सो होय (2)
रोग रहित सुखकारक बलप्रद, अन्न धान सब होय (2)
धन्यवाद तुझे दें पा खा के तुझसे प्रीत संजोय॥
सारे अन्न...
अन्न धान्य खाद्य पदारथ (3) स्नेहित जल में भिगोय (2)
इन्हें पकाकर युक्त बनाकर सेवन कर बली होय (2)
स्नेह कृपा अनुभूत करें तव, विनत हाथ जुड़े दोय॥
सारे अन्न...
पशु पक्षी गौ आदि प्राणी (3) तेरी कृपा ना खोय (2)
तेरा दिया हम सब में बाँटें, विपद्ग्रस्त ना रोय (2)
पायें अन्न फल कुटुम्ब कबीले प्रार्थना करें सब तोय
सारे अन्न...
अन्नों के दाता प्रभु प्यारे
अन्न से प्रसन्न हम होय (2)
सारे अन्न...

154. कृपण से इन्द्र मैत्री नहीं करता

न रे॒वता॑ प॒णिना॑ स॒ख्यमिन्द्रो॑ऽसु॑न्वता सुत॒पाः सं गृ॑णीते।
आस्य॒ वेदः॑ खि॒दति॒ हन्ति॑ न॒ग्नं वि सुष्व॑ये॒ प॒क्तये॒ केव॑लो भूत्॒।

ऋ. 4. 25. 7.

तर्जः *जोगिया से प्रीत किये दुःख*

लोभियों का लोभ ही दुःखमय होय (2)
कृपण मनोरथ, भाव अराति
सुध बुध मति सब खोय
॥लोभियों का॥

दान की उनको ना ही गरज़ है
वो क्या जानें उनका फरज़ है
बस अपने में खोय
केवल अपने लिये पकाये
भोजन पाप का होय (2)
॥लोभियों का॥

ना कोई ऐसे हृदयहीनों का (2)
साथ क्या दे ऐसे दीनों का
मित्र ना बनता कोय (2)
देख के उनकी रोती सूरत
पास ना फटके कोय (2)
॥लोभियों का॥

इन्द्र प्रकोप है बड़ा भयंकर (2)
कृपण दुःखी होता है निरन्तर
बोझ पाप का ढ़ोय (2)
लुट जाते धन वैभव सारे
रोता हाय! ओय!
॥लोभियों का॥

भूखे को दे भोजन खाये (2)
यज्ञ भावना मन में लाये

बीज पुण्य का बोय (2)
ऐसे दानी होते याज्ञिक
दुःख में सब संग होय (2)

॥लोभियों का॥

'सुष्वि'—'पक्ति' इन्द्र के मित्र हैं
पहले जिन्हें दूजों की फिक्र है
इक है लाख में कोय (2)
ऐसे मघवन् मित्र इन्द्र के
प्रेम के भाजन होय (2)

॥लोभियों का॥

(प्रकोप) गुस्सा (कृपण) कन्जूस (अशति) स्वार्थ, अदान (भाव सुष्वि) यथार्थ धन कमाने वाला (पक्ति) यथार्थ भोजन पकाने वाला

155. साधक की साधना से सफलता

यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्यस्पष्ट्र कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति॥

ऋग. 1. 10. 2

तर्जः *जोगिया से प्रीत किये दुःख*

साधना के बिन प्रगति न होय (3)
एकनिष्ठता और तन्मयता के
बीज तो साधक बोय॥

साधना के...

सफल असफल हो जायें ये सम्भव (3)
पर आगे बढ़ना होय (2)
दीखती हैं चोटियाँ सफलता की आगे
साधक सफल ही होय (2)॥

साधना के...

एक चोटी से अन्य अनन्य तक (2)
साधना सतत् ही होय (2)
धैर्य से जो ना निज मुख मोड़े
जीत उसी की होय (2)

साधना के...

जैसे शिशु के प्रयास में माता (3)
शिशु की सहायक होय (2)
ऐसे ही साधक को प्रभु साधे
यदि वो समर्पित होय (2)॥

साधना के...

पूर्ण कृपा दृष्टि ईश्वर की (3)
साधक के प्रति होय (2)

साधना के...

156. वह हमारा पिता दाता पुत्र और सखा है

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वांभ्रात्राय शम्या तनूरुचम्।
त्वं पुत्रोभवसि यस्तेऽविधत्, त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः॥

ऋ. 2. 1. 9

तर्जः ***टिक टिक टिक टिक मळया मलया***

पलपल छिनछिन घड़ी निशदिन, पास आ हे पिता!
सुखवर्षक शत्रु धर्षक, हर ले दुःख विपदा॥
(तराना)
ना दिर दिर दिर दिल्लाना, नादिर दिल्लाना
नादिर दिर दिर दिल्लाना, नादिर दिल्लाना ''
नादिर दिल्लाना दिरदिर, नादिर दिल्लाना ''
नादिर दिरदिर दिल्लाना नादिर दिल्लाना॥ ''

सांसारिक पिता के लालन पालन में है चूक
किन्तु तेरा पालन है अचूक और सूच
तुम ही कीर्तिवर्धक हो, और धर्म के शिक्षक हो
विपद निवारक रक्षक हो, हर 'वाज' के वर्षक हो
लोग इष्टियों के हैं सदा प्रार्थी, करते तुम्हारी पूजा॥
॥पलपल॥

जो भी सच्ची परिचर्या तुम्हारी करे भगवन्।
शिशु बन उसकी गोदी में पहुँच जाते हो तुम
बनके पिता देता पुचकार, कभी दुलार कभी खिलवाड
निहारता जिसे बारम्बार उसे मिला मानों संसार
तुम्हरी किलकारी सुनके बाल-खिलाड़ी, साथ तुम्हें लिए फिरता॥
॥पलपल॥

इसलिये शत्रु जब भी करते हमपे दुष्ट प्रहार
तब तुम सिंह गर्जन करके देते उनको मार
भक्तों के उद्धारक हो, विपदा कष्ट निवारक हो
सच्ची प्रीत के धारक हो, अतिशय करुणा कारक हो
हे पिता! हे माता! हे पुत्र! भ्राता! तेरे सिवा कौन दूजा?

157. कर्मफलों का भाग

प्रथमेन प्रमारेण, त्रेधा विष्वङ्वि गच्छति।
अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन निषेवते॥

अथर्व 11/8/33

तर्जः *डिंगडॉग कोयल मणी को यलमणी ना केते*

आत्मा अजर अमर शस्त्र इसे न काट सकें
ना अग्नि ना ही जल इसे जला गला सकें
है ये अच्छेद्य, है अदाह्य है, अशोष्य, हो ऽ ऽ ऽ ऽ...
ये जन्म लेता है कर्म के भोग से॥ आत्मा...
निष्काम भाव से किए हुए कर्म
सुधी भावों से धर्म कृत कर्म (2)
बिन फल की, इच्छा के, मन बुद्धि के, चाव से
देव पूजा संगति करण करता कर्म लगाव से
शुभ सङ्कल्पित कर्मो से, आनन्द मोक्ष का पा सकें (2) आत्मा...
दूजी है श्रेणी जन्म की जिनमें है मिश्रित कर्म
मिश्रित कर्म (2) कुछ पाप कुछ पुण्य (2)
कभी किसी से छीना झपटी, कभी किसी को देना दान
कभी किसी की निन्दा चुगली कभी प्रभु में रखना ध्यान
इसमें मानव योनि मिले मिले, पड़े भोगने कर्म किए (2) आत्मा...
तीजी है श्रेणी अधम पाप रूप कर्मों की
पाप रूप कर्मो की (2) ढ़ीठ बेशर्मों की (2)
पर पीड़न माँस भक्षण, हिंसा स्तेय या वंचन
दारूबाजी कन्या विक्रय, वैश्यावृत्ति धूंस ग्रहण
पशु पक्षी या कीट पतंग भोग योनि में जन्म मिले (2) आत्मा...
कभी पूर्व कर्मों का फल पाता ये जनम
सत्य में आसन्न प्रभु के न्याय नियम (2)
पुण्यात्मा भी पूर्व कर्म के सत्कर्मो का पाते सुख
पुण्य अधिक से अधिक वे करते मोक्ष की ओर बनाते रुख
आओ हम सत्कर्म करें और मोक्ष में जा विचरें (2) आत्मा...

158. सहारा तुम्हारा

नकिर्देवा मिनीमसि मकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे॥

ऋ. 10. 134. 7. साम. 176

तर्जः *डिंगडांग कोईलमणी कोईलमणी ना केते*

मन्त्र-मनन वेद-यजन जीवन में कर लेंगे
शरण वेद मन्त्रों की हे देवो! धर लेंगे॥
हम इसीलिये वेद को पढ़ रहे
वेदानुसार आचरण कर रहे

ना तो किसी की हम हिंसा करें
ना क्रोध-द्वेष की इच्छा रहे
भाई से भाई के तार जुड़ें
लालच लोभ से ना! स्वार्थ सिद्ध करें यूँ अपना
ना ही मलिन भावों से हो हिंसा या धोखा
ऐसे में वेदों के उन्नत भावों से मन भर लेंगे (2)
॥मन्त्र-मनन॥

हिंसन विमोहना के कीच से हटें
पावन शरण वेद मन्त्रों की लें
आश्रय दोनों बाजुओं से तेरा लें
पुरुषार्थ को पाके राह वेदों की जायें
आँचल तेरा हे इन्द्र सर्वतः थामें
बस यूँ ही हम जनम को पूर्ण सफल कर लेंगे (2)
॥मन्त्र मनन॥

(विमोहना) धोखे में डालना

159. खिलाड़ी

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज। होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः॥

साम. 100. ऋग. 3. 10. 7.

तर्जः *अमृत स्वरूप प्रेमरूपानी*

विश्व के खिलाड़ी खेल तेरा देखा है (2)
खेल रहा विश्व खेल भी अनूठा है
विश्व के खिलाड़ी खेल तेरा देखा है
॥विश्व के॥

मेघ खुशी से मारे छलांगें
झरने मस्ती में झूम झूम गाते
नदियाँ मस्ती में कलकल बहती
और हवायें उछलती रहती
बुलबुल पपीहा चिड़ियों का मेला है
॥विश्व के॥

इस खेल का दूजा नाम है यज्ञ
वैर ना विरोध इसमें खेल है सुसज्ज
लगती है चोटें अङ्गअङ्ग होते घायल
किन्तु ज़ख्मों का, दिल नहीं कायल
घाव खाके भी छाती से उसका एका है
॥विश्व के॥

खेल का सच्चा खिलाड़ी समझा है खेल को
खेल की है शोभा समझे प्रेम व मेल को
सच्चा खिलाड़ी कभी चोट से ना डरता है
चोट खाते खाते याजक और निखरता है
सच्चे खिलाड़ी का सच्चा हेला है
॥विश्व के॥

जिया के लिए खिलाड़ी हरदम जिया है
खेल का आयोजन सूझ बूझ से किया है
वैदिकी हिंसा कभी हिंसा ना होती

इन खेलों में तो उठती है ज्योति
वैर विरोध तो यज्ञ ने भेदा है।

॥विश्व है॥

अग्निदेव अगुआ हो तुम देवताओं के
घर फूँक तमाशा देखने वाली लीलाओं के
तेरे खिलाड़ीपन का अग्निदेव क्या कहना
खेल यजमान को भी सिखा दो ना
खेल अकेले जाता नहीं खेला है

॥विश्व के॥

ना यजमानों की जब तक सुविधा
रवि-शशि देवों सी दो प्रतिभा
एकत्र फिर यजमानों को करना
नियमानुसार करें खेल की रचना
विश्व-याग का खरा खेल खेला है

॥विश्व के॥

जिसका स्वाहा से अति अनुराग है
उसको कौन जला सकता है
कौन उसे सुर-ताल की मस्ती में
दुःख देकर सता सकता है
आँच क्या दें और, जो आहुति में बैठा है

॥विश्व के॥

खेल के, बुलाते हो, दूसरों को खेलने
अग्नि देव तुम बैठे प्रेम और मेल में
जिव्हा भुजाओं से तुम ही पुकारते
मस्तानी हँसी का जादू सबपे डालते
बनने को ईंधन, यजिष्ठ ने भेजा है

विश्व में॥

(कायल) यथार्थ स्वीकारने वाला (घाती) मारने वाला (हेला) खेल (जिया) ह्दय (जिया) जीना (भेदना) फाड़देना, अलग करना (अगुआ) आगे करने वाल ('याजिष्ठ') बड़ा यजमान

❑❑❑